मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 114 ● वर्ष 12, अंक 10 ● दिसम्बर 2022 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

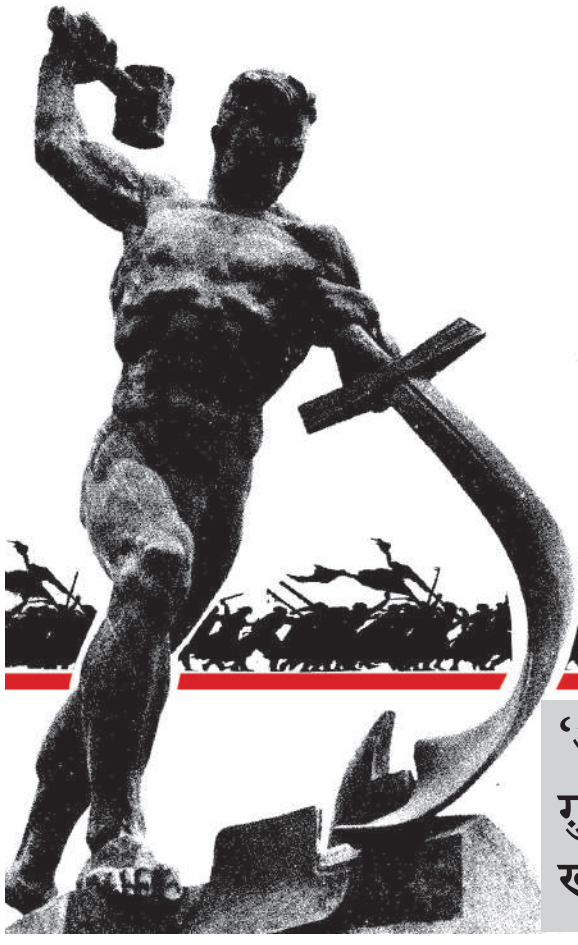

'आधुनिक रोम' में ग़ुलामों की तरह खटते मज़दूर 5

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला : मूल्य के श्रम सिद्धान्त का विकास 13

ब्राज़ील में लूला के जीतने के निहितार्थ 12

आम मेहनतकश जनता का ख़तरनाक और धोखेबाज़ दुश्मन है अरविन्द केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी'

सम्पादकीय अग्रलेख

आज से क़रीब एक दशक से भी ज़्यादा वक़्त पहले सदाचार की डुगडुगी बजाते हुए अण्णा हज़ारे के नेतृत्व में 'इण्डिया अगेंस्ट करप्शन' का मजमा दिल्ली में एकत्र हुआ था। इस शंकर की बारात में किरण बेदी जैसे जोकरों के साथ योगेन्द्र यादव, प्रशान्त भूषण व शान्ति भूषण जैसे घाघ समाजवादी व सुधारवादी तथा अरविन्द केजरीवाल व मनीष सिसोदिया जैसे अवसरवादी और लोकरंजकतावादी दक्षिणपन्थी और साथ ही स्वामी रामदेव जैसे मक्कार ठग बाबा इकट्ठा हुए थे। अरविन्द केजरीवाल 'परिवर्तन' नाम का एक एनजीओ चलाता था, जबकि सिसोदिया 'कबीर' नाम का एनजीओ चलाता था और दोनों को ही विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से फ़ण्ड मिला करता था। आज भी 'आप' से रिश्ता रखने वाले इसी प्रकार के कई एनजीओ हैं, जो सुधारवाद की गन्द जनता में फैलाने में लगे हुए हैं। उससे पहले केजरीवाल भारतीय राजस्व सेवा में अधिकारी था। वह नौकरी छोड़कर एनजीओ की सुधारवादी राजनीति में आया था और उसका विचारधारात्मक रुझान शुरू से ही व्यवहारवादी मौक़ापरस्ती और दक्षिणपन्थ का था। अण्णा हज़ारे के आन्दोलन ने उसे अपना चेहरा चमकाने का पूरा मौक़ा दिया। वह अण्णा हज़ारे का दाहिना हाथ बनकर उभरा। टुटपुँजिया वर्गों के इस आन्दोलन ने भारतीय पूँजीवाद की ज़बर्दस्त सेवा की। 2010-11 में देश में सत्ताधारी कांग्रेस के भ्रष्टाचार, बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई का प्रकोप छाया हुआ था। लोगों में ग़ुस्सा था। 2012 में दिल्ली में 16 दिसम्बर की बर्बर घटना हुई जिसके कारण जनता के दिल में लम्बे समय से भरा ग़ुस्सा सड़कों पर फूट पड़ा।

पूँजीवादी शासक वर्ग के दूरदर्शी पहरेदारों ने इस घड़ी की नज़ाकत को समझा और जनता के ग़ुस्से को व्यवस्था-विरोधी दिशा में मुड़ने से रोकने के लिए 'इण्डिया अगेंस्ट करप्शन' का साथ देने की हिमायत की। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस आन्दोलन को खड़ा करने में विचारधारात्मक और राजनीतिक तौर पर केन्द्रीय भूमिका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की थी। आज इस बात से इन्कार करने वाला व्यक्ति पिछले एक दशक अवश्य ही सोता रहा है। अण्णा हज़ारे अन्दरूनी तौर पर आर.एस.एस. के साथ सम्बन्ध रखने वाला एक प्रतिक्रियावादी दक्षिणपन्थी व्यक्ति है। रालेगण सिद्धी में और देश के पैमाने पर उसके राजनीतिक व्यवहार ने इस बात को बिना शक साबित किया है। जहाँ तक योगेन्द्र यादव जैसे समाजवादियों की बात है, तो इनकी भूमिका हमेशा ही दक्षिणपन्थी राजनीति को मदद पहुँचाने की ही रही है। चाहे वह राम मनोहर लोहिया के दौर की संयुक्त विधायक दल सरकारों का मसला हो या फिर जयप्रकाश नारायण द्वारा 1970 के दशक के व्यापक जनान्दोलन में संघी ताक़तों को घुसाने का मसला हो, भारत के समाजवादियों ने हमेशा ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दक्षिणपन्थ और फ़ासीवाद को मुख्यधारा में लाने और उसे सहायता पहुँचाने का काम ही किया है।

किरण बेदी जैसे राजनीतिक जोकरों के बारे में ज़्यादा किसी चर्चा की ज़रूरत नहीं है। इसके अलावा, स्वामी रामदेव के रूप में एक दक्षिणपन्थी साम्प्रदायिक बाबा भी इस मुहिम में उछल-उछलकर शिरकत कर रहा था। अरविन्द केजरीवाल और मनीष सिसोदिया उस समय एनजीओ राजनीति में उभर रहे अहम नाम थे। केजरीवाल का एनजीओ 'परिवर्तन' और सिसोदिया का एनजीओ 'कबीर' विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों के टुकड़ों पर पलते थे और उन्हें खड़ा ही इसलिए किया गया था कि समाज में मौजूद असन्तोष पर पानी के ठण्डे छींटों का छिड़काव किया जा सके। इसी राजनीति से निकलकर अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा

(पेज 9 पर जारी)

ईडब्ल्यूएस आरक्षण : मेहनतकश जनता को बाँटने की शासक वर्ग की एक और साज़िश

● लता

भाजपा की मोदी सरकार जनता को बाँटने के एक नये उपकरण के साथ सामने आयी है : ईडब्ल्यूएस आरक्षण। इसका वास्तविक मक़सद जनता के बीच जातिगत पूर्वाग्रहों को हवा देना और सवर्ण मध्यवर्गीय वोटों का अपने पक्ष में ध्रुवीकरण करना है। यह आरक्षण की पूरी पूँजीवादी राजनीति में ही एक नया अध्याय है। जातिगत आधार पर मौजूद आरक्षण की पूरी राजनीति का भी देश के पूँजीपति वर्ग ने बहुत ही कुशलता से इस्तेमाल किया है, जबकि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के हावी होने के साथ आरक्षण के पक्ष या विपक्ष में खड़ी राजनीति का आधार लगातार कमज़ोर होता गया है। क्योंकि यह एक ऐसी चीज़ में हिस्सा बाँटने की बात करती है, जो वास्तव में लुप्तप्राय हो चुकी है : सरकारी नौकरी व सरकारी उच्चतर शिक्षा। लेकिन इसके बावजूद पूँजीवादी अस्मितावादी राजनीति आरक्षण के मसले को गर्माकर हमेशा ही अपनी गोटियाँ लाल करती है और सवर्ण जातियों के लिए ईडब्ल्यूएस आरक्षण का मसला भी इसी प्रक्रिया का एक अंग है। आइए, इस पर मज़दूरवर्गीय नज़रिए से थोड़ा विचार करते हैं।

आरक्षण की राजनीति और ईडब्ल्यूएस आरक्षण

आरक्षण के मुद्दे को हर चुनाव के पहले गरमाया ही जाता है। जातिवादी राजनीति को सुलगाये रखने के लिए इसे बीच-बीच में भी मुद्दा बनाया जाता है। जाट आरक्षण, पाटीदार आरक्षण, 13 प्वाइण्ट रोस्टर सिस्टम, आरक्षण के मसले पर गुर्जर-मीणा विवाद और फिर 2019 में ईडब्ल्यूएस आरक्षण का मसला उछालना, यानी सवर्ण जातियों के आर्थिक रूप से कमज़ोर तबक़ों के लिए आरक्षण। चुनावों के इस मौसम में भी एक बार फिर ईडब्ल्यूएस आरक्षण को लेकर राजनीति गरमायी हुई है। मोदी सरकार ने 2019 में संविधान के 103वें संशोधन के बाद आर्थिक आधार पर सवर्ण जातियों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान संविधान में शामिल कर लिया था। संविधान के इस संशोधन को चुनौती दी गयी थी। 41 याचिकाओं में कहा गया कि यह संविधान के सामाजिक न्याय की अवधारणा का उल्लंघन है। संविधान में समाज के ऐतिहासिक तौर पर पिछड़े और उत्पीड़ित तबक़ों, जैसे कि दलितों व आदिवासियों की स्थिति में सुधार के लिए सकारात्मक कार्रवाई के तौर पर आरक्षण का प्रावधान किया गया था। 103वाँ संशोधन उस तबक़े के साथ अन्याय है क्योंकि इस 10 प्रतिशत आरक्षण से इन सामाजिक समुदायों को बाहर रखा जा रहा है। 7 नवम्बर को सुप्रीम कोर्ट ने ईडब्ल्यूएस आरक्षण की याचिका पर फ़ैसला देते

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

‘सीओपी’ से यदि पर्यावरण विनाश रुकना है तब तो विनाश की ही सम्भावना अधिक है!

(पेज 16 से आगे)

हैं। विश्व के जलवायु संकट और प्राकृतिक विनाश पर घड़ियाली आँसू ही बहाते हैं। ‘सीओपी-26’ में भारत और चीन दोनों ने कोयले की खपत को चरणबद्ध तरीक़े से धीरे-धीरे कम करते हुए समाप्त करने की बात कही थी। लेकिन सच्चाई यह है कि दुनियाभर में जितने भी नये कोयले से चलने वाले पावर प्लाण्ट बन रहे हैं, उसका लगभग 55 प्रतिशत चीन बना रहा है और 15 प्रतिशत भारत बना रहा है। ‘सीओपी’ जैसे सम्मेलन कार्बन उत्सर्जन को रोकने के लिए कितने प्रतिबद्ध हैं इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि ‘सीओपी-27’ में जीवाश्म ईंधन उद्योग से जुड़े 636 प्रतिनिधि शामिल थे। इन प्रतिनिधियों ने गैस और पेट्रोल के कम-से-कम 12 नये सौदे वहीं सम्मेलन में बैठे-बैठे कर लिये!

सम्मेलन के बाहर जलवायु संकट पर अन्तरराष्ट्रीय प्रतिनिधियों के घड़ियाली आँसू और नाकारेपन का प्रतिरोध करने पर्यावरण कार्यकर्ता पहुँचे हुए थे। उन्हें सम्मेलन की जगह से मीलों दूर सेना की निगरानी में रखा गया था। मीडिया भी बेहद सीमित संख्या में वहाँ उपस्थित था। लेकिन इसके विपरीत बड़ी-बड़ी तेल कम्पनियों के मालिकों का लाल क़ालीन बिछाकर स्वागत हो रहा था। इनमें शेल, एक्सॉन, बीपी, अरामको आदि कम्पनियों के प्रतिनिधि आये थे। इससे पूरे सम्मेलन की गम्भीरता को समझा जा सकता है। ग्लोबल वॉर्मिंग को बढ़ाने में कोयले के बाद सबसे बड़ा हाथ जीवाश्म ईंधनों, यानी पेट्रोल, डीज़ल आदि का है और उन पर नियंत्रण की जगह सम्मेलन में उनके सौदे किये जा रहे थे।

पर्यावरण बचाने के नाम पर दुनियाभर के पूँजीपतियों और उनकी चाकर सरकारों की नौटंकी हमारे सामने है। सवाल यह है कि हमें क्या करना है? विज्ञान हमें यह बताता है कि आपसी होड़ और मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दियों में रहकर जलवायु संकट का समाधान नामुमकिन है। आने वाले दिनों में मुनाफ़े की गिरती दर के कारण जब पूँजीवादी संकट और तीव्र होगा, तो पूँजीपतियों द्वारा श्रम का शोषण और प्रकृति का दोहन भी बढ़ेगा। इससे जलवायु संकट भी ज़्यादा भयानक रूप लेगा और हम एक ऐसे मुकाम पर पहुँच जायेंगे जहाँ से वापस लौटना असम्भव होगा, पर्यावरण के विनाश को रोकना, लगभग नामुमकिन हो जायेगा। क्या आज हम हाथ पर हाथ धरे उस क़यामत के दिन का इन्तज़ार करेंगे? क्या हम मानवता को तेज़ी से विनाश की और बढ़ते चुपचाप देखते रहेंगे? हमें विश्वास है कि आम मज़दूर और मेहनतकश वर्ग चुपचाप नहीं बैठेगा। मुनाफ़े पर टिकी इस व्यवस्था को समाप्त करने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी मज़दूर वर्ग के कन्धों पर है। वह जितनी जल्दी इस ज़िम्मेदारी को उठा लेगा उसके लिए, इन्सानियत के लिए और प्रकृति के लिए उतना ही अच्छा होगा। हमें विश्वास है कि पूँजीवाद द्वारा पृथ्वी को तबाह कर दिये जाने से पहले, मज़दूर वर्ग एक नयी समाजवादी व्यवस्था की नींव रखेगा और समूची इन्सानियत को पूँजीवाद के हाथों हो रही पर्यावरणीय तबाही और त्रासदी से बचायेगा। बढ़ते पर्यावरणीय संकट के साथ ही दुनियाभर की मेहनतकश जनता सड़कों पर उतर रही है और आगे यह प्रक्रिया और तेज़ होगी। इन आन्दोलनों में सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारियों को नेतृत्वकारी भूमिका अपनानी चाहिए और लोगों को यह समझा देना चाहिए कि पर्यावरणीय विनाश के लिए पूँजीवाद ज़िम्मेदार है। वर्ग संघर्ष के बिना पर्यावरण को बचाने की क़वायद करना बाग़बानी का शौक़ पूरा करने से ज़्यादा कुछ भी नहीं है।

‘मज़दूर बिगुल’ के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. ‘मज़दूर बिगुल’ की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे ‘बिगुल’ 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 9721481546

“बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।” – **लेनिन**

‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी ‘मज़दूर बिगुल’ से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

‘मज़दूर बिगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. ‘मज़दूर बिगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. ‘मज़दूर बिगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और ‘बिगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. ‘मज़दूर बिगुल’ स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको ‘मज़दूर बिगुल’ का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

दिल्ली में नगर निगम चुनाव में 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' द्वारा 'आप' और 'भाजपा' के ख़िलाफ़ व्यापक बहिष्कार अभियान!

दिल्ली में 4 दिसम्बर को होने वाले निगम चुनाव के मद्देनज़र दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU) ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में घोषणा की थी कि दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मी इस बार मज़दूर-महिला विरोधी भाजपा और आम आदमी पार्टी का पूर्ण बहिष्कार करेंगी। यह बहिष्कार सिर्फ़ राजधानी की 22,000 आँगनवाड़ीकर्मी और उनके परिवार ही नहीं कर रहे हैं बल्कि आँगनवाड़ीकर्मी अपने लाभार्थियों से और दिल्ली की जनता से भी यह अपील कर रही हैं। इस दौरान नज़फ़गढ़, सीमापुरी से लेकर पहाड़गंज, जाफ़राबाद व अन्य कई इलाक़ों में महिलाकर्मियों ने व्यापक और सघन अभियान चलाते हुए दिल्ली की जनता के सामने इन दोनों ही चुनावबाज़ पार्टियों के झूठ और फ़रेब को नंगा किया। आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपने गली-मुहल्लों तक में 'आप' व भाजपा के प्रत्याशियों व कार्यकर्ताओं के प्रवेश पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया हुआ है।

बहिष्कार अभियान के दौरान महिलाओं ने दिल्ली के पहाड़गंज में सभा को सम्बोधित करने पहुँचे मुख्यमंत्री केजरीवाल का भी घेराव किया। सभा में महिलाकर्मियों ने बहिष्कार के नारों, तख़्तियों, काले झण्डों के ज़रिए अपना रोष व्यक्त किया। कोरोना के दौरान जिन आँगनवाड़ीकर्मियों को फ्रण्टलाइन वर्कर्स कहा जा रहा था, वही महिलाएँ जब केजरीवाल से अपनी बर्ख़ास्तगी के ख़िलाफ़ सवाल जवाब करने पहुँची तो मुख्यमंत्री जी ने मंच से उनके लिए 'गुण्डी', 'लफंगी' जैसे अभद्र शब्दों का इस्तेमाल किया। ख़ुद को "आम आदमी" कहने वाले फ़र्ज़ीवाल और मनीष सिसोदिया ने अपने पुरुष कार्यकर्ताओं से प्रदर्शन कर रही महिलाओं पर हमले करवाये और उन्हें गालियाँ देने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी। आम आदमी पार्टी की ये शर्मनाक हरकतें साफ़ बताती हैं कि यह पार्टी असल में ख़ुद गुण्डों और लफंगों की पार्टी है, जो शान्तिपूर्ण तरीक़े से अपनी माँग उठाने वाली महिलाओं पर हमले करती है। महिला मोहल्ला क्लीनिक खोलने और निर्माण मज़दूरों को 5000 रुपये सहायता राशि देने के जुमले फेंकने वाले केजरीवाल महिलाकर्मियों के रोज़गार छीनने के बाद उनके लिए अपशब्द का इस्तेमाल करते हैं। इससे पहले भी 'आप' के नुमाइन्दे और दिल्ली महिला बाल विकास विभाग के पदाधिकारी नवलेन्द्र कुमार ने हड़ताल के दौरान महिलाकर्मियों के ख़िलाफ़ आपत्तिजनक शब्दों का इस्तेमाल किया था। लेकिन आँगनवाड़ीकर्मियों के जुझारू प्रदर्शन के कारण केजरीवाल और उसके लग्गू-भग्गुओं के मंसूबे कामयाब नहीं हो पाये और केजरीवाल को अपनी ही सभा से आनन-फ़ानन में जान छुड़ाकर भागना पड़ा।

सिर्फ़ आम आदमी पार्टी ही नहीं भाजपा का भी स्त्री-विरोधी, मज़दूर-विरोधी चेहरा आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपने आन्दोलन के दौरान बेपर्द किया है। एक तरफ़ तो भाजपा का प्रदेश अध्यक्ष आदेश गुप्ता आँगनवाड़ीकर्मियों के टर्मिनेशन पर घड़ियाली आँसू बहाते थकता नहीं है वहीं इसके ही उपराज्यपाल महोदय आँगनवाड़ीकर्मियों के प्रतिनिधिमण्डल को देखते ही दिल्ली पुलिस को बुलाकर महिलाओं को डीटेन करवाने में ज़रा भी समय नहीं गँवाते हैं। यही भाजपा जिसे आँगनवाड़ीकर्मियों की वीरतापूर्ण हड़ताल पर हेस्मा लगाते वक़्त आँगनवाड़ीकर्मियों की याद नहीं आयी थी, आज नगर निगम चुनाव में अपने वोट बैंक के ख़ातिर आँगनवाड़ी महिलाओं का इस्तेमाल करना चाह रहे हैं। इसलिए, आँगनवाड़ीकर्मी इन दोनों ही पार्टियों के ख़िलाफ़ बहिष्कार अभियान चला रही हैं और दिल्ली की जनता के बीच इनका पर्दाफ़ाश करने के साथ साथ इनकी चुनावी सभा में भी इनका भण्डाफोड़ कर रही हैं। वोट के लिए हाथ-पैर जोड़ते हुए आने वाले इनके कार्यकर्ताओं को भी अपनी गली से भगाने के अलावा 'आप' और 'भाजपा' के कार्यकर्ताओं का जूतों की माला से भी स्वागत कर रही हैं।

'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर हम आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों के जुझारू और बहादुराना संघर्ष की रिपोर्ट लिखते रहे हैं। पाठकों को यह ज्ञात होगा कि इस वर्ष के प्रारम्भ में दिल्ली की हज़ारों आँगनवाड़ीकर्मियों ने 38 दिनों की लम्बी हड़ताल करके एक ऐतिहासिक संघर्ष को अंजाम दिया था। इसके फलस्वरूप केजरीवाल सरकार को आँगनवाड़ीकर्मियों के मानदेय में बढ़ोत्तरी करनी पड़ी थी। लेकिन पर्याप्त बढ़ोत्तरी न होने के कारण आँगनवाड़ीकर्मियों की

(पेज 6 पर जारी)

सनबीम (गुड़गाँव) कम्पनी में ग़ैर-क़ानूनी बर्ख़ास्तगी, छँटनी, वेतन कटौती, ग़ैर-क़ानूनी ठेका प्रथा, श्रम क़ानूनों के उल्लंघन के ख़िलाफ़ संघर्ष की सम्भावनाएँ

● शाम मूर्ति

सनबीम लाईटवेटिंग सोल्यूशन्स प्रा० लि० (गुड़गाँव) फ़ैक्टरी के ठेका मज़दूरों की 16 नवम्बर (बुधवार) 2022 को कम्पनी प्रबन्धन द्वारा बढ़ती बर्ख़ास्तगी, छँटनी, वेतन कटौती, ज़बरन ओवर टाइम जैसी अन्यायपूर्ण गतिविधियों के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा आख़िर फूट ही गया। मज़दूरों ने क़रीब 500-600 ठेका मज़दूरों की सफल रैली और अपनी एकजुटता से इस अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष का बिगुल बजा दिया है। संघर्ष की शुरुआत 27 सितम्बर 2022 को पाँच साथियों के अचानक बर्ख़ास्त (टर्मिनेट) कर देने से हो गयी थी। उनका क़सूर महज़ इतना था कि उन्होंने अपने ही मज़दूर भाइयों (राहुल तिवारी, पप्पू सिंह, राजकिशोर साहू, विनीत मिश्रा, नवल किशोर) का मुद्दा उठाया और प्रबन्धन व 11 ठेकेदारों समेत श्रम विभाग, प्रशासन और सरकार को लिखित रूप से ज्ञापन देने के लिए हस्ताक्षर करवा रहे थे। इसका ज़िक्र हम 'मज़दूर बिगुल' के नवम्बर अंक में प्रकाशित अपनी पिछली रिपोर्ट में कर चुके हैं। सितम्बर महीने की 11 तारीख़ (2022) के नोटिस के तहत ग्रोस एडुकेयर प्राईवेट लिमिटेड नामक ठेका कम्पनी के अन्तर्गत काम करने वाले 46 ठेका मज़दूरों की पहली नवम्बर को यह कहकर छँटनी कर दी गयी कि उनके उक्त ठेकेदार का ठेका ख़त्म हो गया है। ठेके पर काम करने वाले मज़दूरों को 10-20 सालों से काम करने के बावजूद काग़ज़ों में हेल्पर ही दिखाया जा रहा है, जबकि वे वास्तव में ऑपरेटर के तौर पर काम करते हैं, जिनकी नियुक्ति, संचालन और सुपरविज़न प्रबन्धन द्वारा किया जाता है, जो 240 दिन स्थायी प्रकृति पर काम करने के बाद स्थायी रोज़गार के लिए क़ानूनी हक़दार होते हैं। इस तरह से कम्पनी में ठेका प्रथा (विनियमन व उन्मूलन) एक्ट (राज्य 1970), (केन्द्रीय नियम 1971) का उल्लंघन हो रहा है जो कम्पनी प्रबन्धन द्वारा लगातार किया जा रहा है। यानी अनुचित श्रम व्यवहार (इलीगल लेबर प्रेक्टिस) चल रही है। यह श्रम विभाग, प्रशासन और सरकार की नाक के नीचे चल रहा है। इसकी गोदी मीडिया कभी चर्चा नहीं करेगा। वह बस दंगाई के समान आज साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने का ही काम कर रहा है।

इस बीच ठेका मज़दूरों के समर्थन में कम्पनी के स्थायी मज़दूरों के खुलकर सामने न आने और ज़मीनी संघर्ष की कोई ठोस कार्रवाई न करने के चलते यानी स्वयं ठेका मज़दूरों द्वारा ज़मीनी संघर्ष की शुरुआत देर से होने के कारण एक-तिहाई छँटनी किये गये ग्रोस एडूक्यर के ठेका मज़दूर अपना चुकता हिसाब ले चुके हैं। साथ ही इस बीच गुड़गाँव प्लाण्ट में काम करने वाले ठेका मज़दूरों के अलावा स्थायी मज़दूरों को भी प्लाण्ट से निकालने का नोटिस देने की बातें भी सामने आयी हैं। यह भी ज्ञात रहे कि सनबीम कम्पनी प्रबन्धन पिछले साल 31 मार्च 2021 को 113 स्थायी मज़दूरों को ज़बरन सेवानिवृत्ति (रिटायरमेण्ट) के नाम पर निकाल चुका है, जिसमें से अधिकाँश मज़दूर अपना हिसाब लेकर जा चुके हैं।

कम्पनी प्रबन्धन का मंसूबा क्या है?

सनबीम कम्पनी प्रबन्धन ठेका मज़दूर हो या स्थायी मज़दूर, सारे पुराने मज़दूरों को निकालकर सस्ते, कच्चे और असुरक्षित मज़दूरों की भर्ती की योजना पर काम कर रहा है। यह इस वक़्त देश और दुनिया का पूँजीपति वर्ग हर सेक्टर में मुनाफ़े की दर में कमी की वजह से कर रहा है। कोरोना काल से पहले सनबीम कम्पनी में ठेका मज़दूरों की संख्या 3000 से ऊपर थी और स्थायी मज़दूरों की 1100 के आसपास थी। लेकिन आज ठेका मज़दूर 1050 और स्थायी मज़दूरों की संख्या 650 के आसपास सिमट गयी है। इस तरह 10-20 साल पुराने प्रशिक्षित मज़दूरों को रिटारमेण्ट से पहले ज़बरन लगातार निकाला जा रहा है। कभी कार्ड नम्बर बदलकर यानी ठेकेदार का नाम बदलकर, कभी ठेका ख़त्म होने, कभी प्लाण्ट ट्रांस्फ़र करने, कभी प्लाण्ट को बन्द करने की बात कर, कभी घाटा दिखाकर, तमाम झूठे बहानों के ज़रिए मज़दूरों को बाहर किया जा रहा है। मज़दूरों को नींबू की तरह निचोड़कर मनमाने तरीक़े से 'जब चाहे रखो और जब चाहे निकालो दो' यानी 'हायर एण्ड फ़ायर' की नीति को बेरोकटोक लागू किया जा रहा है ताकि मज़दूर ग़ुलामों की तरह सिर झुकाकर काम करते रहें, और बोलने वालों का तुरन्त गेट बन्द किया जा सके।

सनबीम कम्पनी ऑटोसेक्टर की बड़ी वेण्डर कम्पनियों में से एक है जिसके चार प्लाण्ट हैं, जिसका कारोबार खरबों में है, जो ऑटोसेक्टर और ग़ैर-आटोसेक्टर की कई मदर व वेण्डर कम्पनियों के कल पुर्ज़े बनाती है : 1) सनबीम लाइटवेटिंग सॉल्यूशन्स प्राइवेट लिमिटेड, 38/6 के. एम. स्टोन, दिल्ली - जयपुर हाइवे, नरसिंहपुर, गुड़गाँव हरियाणा - 122001 ; 2) सनबीम लाइटवेटिंग सॉल्यूशन्स प्राइवेट लिमिटेड, प्लाण्ट नम्बर एसपी1-डी, रिको इण्डस्ट्रीयल एरिया टपूकड़ा, भिवाड़ी, ज़िला अलवर, राजस्थान - 301707; 3) सनबीम लाइटवेटिंग सॉल्यूशन्स प्राइवेट लिमिटेड, 730/12आर, इण्डस्ट्रीयल एरिया बी, लुधियाना 140003, पंजाब तथा 4) सनबीम लाइटवेटिंग सॉल्यूशन्स प्राइवेट लिमिटेड, एसवाईएल नम्बर 45/50 & ; 51-पी1, स्टेट हाईवे हलोल टू सावली, पी. ओ. घण्टियाल, गाँव - कम्बल, सावली, वडोदरा, गुजरात 391510। चारों प्लाण्टों में मज़दूरों की स्थिति बुरी है। कहीं पर भी ठेका मज़दूरों की कोई यूनियन नहीं है।

अब तक का घटनाक्रम

सनबीम के ठेका मज़दूर सनबीम प्रबन्धन को 13 नवम्बर 2022 को अपना माँगपत्रक भी औपचारिक रूप से सौंप चुके हैं। इससे पहले 27 सितम्बर को पहली बार शिकायत दर्ज करवायी गयी थी। लेकिन सहायक श्रमायुक्त (ए.एल.सी. – असिस्टेण्ट लेबर कमिश्नर) के यहाँ शिकायत पर कोई सुनवाई व कार्रवाई नहीं हुई। इस पर 16 नवम्बर को ठेका मज़दूरों ने कम्पनी गेट से गुड़गाँव के लेकर लघु सचिवालय स्थित उपायुक्त दफ़्तर पर एक बार रोष-प्रदर्शन रैली की और उन्हें ज्ञापन सौंपा। क़ानूनी संघर्ष के दायरे में सीमित रहने के बजाय ज़मीनी संघर्ष की शुरुआत की तरफ़ क़दम बढ़ाया गया है, चाहे देर से ही सही। यानी डी.सी. (डिप्टी कमिश्नर) गुड़गाँव को अपना माँगपत्रक सौंपते हुए इसकी प्रतियों को (डीएलसी - डिप्टी लेबर कमिश्नर - सहायक श्रमायुक्त) को भी दिया गया है। इसमें निकाले गये मज़दूरों को वापस लेने, ग़ैर-क़ानूनी ठेका चलन, वेतन कटौती पर रोक लगाने माँग की और कम्पनी प्रबन्धन द्वारा श्रम क़ानूनों का उल्लंघन व अनुचित श्रम व्यवहार से अवगत करवाते

(पेज 6 पर जारी)

सिडकुल, हरिद्वार के प्लास्टिक उत्पाद के उद्योग की एक फ़ैक्टरी की रिपोर्ट

● फ़ेबियन

हरिद्वार सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र में प्लास्टिक उत्पाद के उद्योग की कई कम्पनियाँ हैं जैसे टीपैक पैकेजिंग इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, एपेक्स इण्डस्ट्रीज, टू ब्लू , फ्रेश पेट आदि। कई कम्पनियाँ हैं जहाँ मज़दूरों की काम की स्थिति बेहद कठिन और थकाऊ है। यहाँ रोज़गार की सुरक्षा, श्रम अधिकार, कार्यस्थल पर सुरक्षा और बुनियादी सुविधाओं तक का भयंकर अभाव है।

टीपैक पैकेजिंग इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड ऐसी ही एक कम्पनी है। टीपैक पैकेजिंग इण्डिया प्राइवेट लिमि. थाइलैण्ड की 'सनपेट कम्पनी' की भारतीय सबसिडियरी कम्पनी है। सनपेट कम्पनी के दुनियाभर में कुल दस प्रोडक्शन सेण्टर हैं। चार सेण्टर थाइलैण्ड में और छ: कम्पनियाँ भारत में हैं। यह कम्पनी फ़ार्मास्युटिकल, कॉस्मेटिक, परफ़्यूम, खाद्य उत्पाद, पेय पदार्थ, तेल व मोटर वाहन स्नेहक के उद्योगों के लिए प्लास्टिक की बोतल व जार बनाती हैं। यह कम्पनी जॉनसन एण्ड जॉनसन (सैवलॉन), नेस्ले, डाबर, आई.टी.सी, युनिलिवर (ब्रुट परफ़्यूम), पतंजली, आदि की वेण्डर कम्पनी है।

इस कम्पनी में क़रीबन 150 मज़दूर 12 घण्टे की दो शिफ़्टों में काम करते हैं। इस कम्पनी में उत्पादन की प्रक्रिया तीन हिस्सों में बँटी हुई है। पहला विभाग मैन्युफ़ैक्चरिंग का है जहाँ प्लास्टिक के दानों से प्रिफ़ॉर्म बोतल व जार बनाया जाता है। इस कच्चे माल – प्लास्टिक के दानों को रिलायंस इण्डस्ट्रीज़, दहेज, गुजरात से मँगाया जाता है। यह प्लास्टिक के दाने 1150 किलो. के पैक साइज़ में आते हैं। इस एक टन के प्लास्टिक के दानों की क़ीमत 89,000/- रुपये है। कम्पनी में हर रोज़ क़रीबन 25 से 26 टन प्लास्टिक के दानों की खपत होती है। यानी 25 से 26 टन के प्लास्टिक प्रिफ़ॉर्म बोतल व जार रोज़ बनते हैं। इससे कम्पनी के प्रोडक्शन का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

इस विभाग में कुल 26 मोल्डिंग मशीन हैं। इनमें से तीन मशीनें 'सिंगल स्टेज इंजेक्शन स्ट्रेच ब्लो मोल्डिंग मशीन' हैं जो प्रिफ़ॉर्म बनाती हैं। प्रिफ़ॉर्म टेस्ट ट्यूब के आकार का प्लास्टिक होता है जिससे फिर एक दूसरे मोल्डिंग मशीन द्वारा बोतल बनाया जाता है। बाक़ी की 23 मशीनें 'टू स्टेज रि हीट स्ट्रेच ब्लो मोल्डिंग मशीन' हैं जो बोतल व जार बनाती हैं। कम्पनी अपने ग्राहक की माँग के अनुसार प्रिफ़ॉर्म या बोतल बनाकर देती है। ये 26 मोल्डिंग मशीनें ऑटोमेटिक हैं।

इस विभाग में एक शिफ़्ट में कुल दो मज़दूर काम करते हैं जो ऑपरेटर को मशीन में गड़बड़ी होने पर मदद करते हैं। इसके अलावा वे प्लास्टिक के दानों का टैंक भी चेक करते हैं। प्लास्टिक के दानों के टैंक की क्षमता 20 टन की है। जब टैंक में दानों की मात्रा कम हो जाती है तो एक मज़दूर उस टैंक में उतरकर फावड़े से उन दानों को सक्शन पाइप के पास सेट करता है। उस 20 टन के टैंक की गहराई 20 फीट से ज़्यादा है। उसके अन्दर कोई लाइट भी नहीं है। जब मज़दूर अन्दर जाता है तो उसके के साथ कोई दूसरा मज़दूर भी नहीं होता है। ऐसे में दुर्घटना होने की सम्भावना बनी रहती है।

दूसरा विभाग पैकेजिंग का है। यह विभाग दो उप विभागों में बँटा हुआ है – 'इंजेक्शन मोल्डिंग सेक्शन' और 'ब्लोइंग सेक्शन'। इंजेक्शन मोल्डिंग सेक्शन में प्रिफ़ॉर्म बनते हैं और ब्लोइंग सेक्शन में 10 एम.एल. से लेकर 1 लीटर के बोतल व जार बनते हैं। एक मज़दूर मशीन द्वारा बनाये गये प्रिफ़ॉर्म को चेक करके ख़राब प्रिफ़ॉर्म को छाँटता रहता है। दूसरा मज़दूर प्रिफ़ॉर्म को कट्टों में या बॉक्स में पैक करता है। पैक करने वाले मज़दूर को बताये गये कट्टे या बॉक्स को वज़न करके पैक करना होता है। कट्टों को पैक करने के लिए मज़दूर हैण्ड सिलाई मशीन का इस्तेमाल करते हैं। हैण्ड सिलाई मशीन का वज़न 6 किलो होता है। माल के साइज़ के हिसाब से हर मज़दूर को 55 से 110 कट्टे 12 घण्टे में सिलने पड़ते हैं। बॉक्स की पैकिंग में टेप का इस्तेमाल होता है और मज़दूर को टेप काटने के लिए कोई औज़ार नहीं दिया जाता है। बॉक्स पैकिंग में एक मज़दूर औसतन माल के साइज़ के हिसाब से 100-150 बॉक्स पैक करता है।

दूसरा उप-विभाग ब्लोइंग सेक्शन है। पूरे कम्पनी में सिर्फ़ इस सेक्शन में स्त्री व पुरुष मज़दूर दोनों काम करते हैं। यहाँ एक मशीन पर एक ही मज़दूर बोतल चेक करता है और उन बोतलों को ट्रे में सेट करता है। एक या दो मज़दूर इन सभी मशीनों के ट्रे में रखे बोतल व जार को प्लास्टिक में सील करते हैं। उसके बाद चार मज़दूरों द्वारा हीटर मशीन से बोतलों की इन सीलों को ठोस करके बॉक्स में पैक किया जाता है। इन दोनों विभाग में जब माल पूरा पैक हो जाता है तो उसे स्टोर में भेज दिया जाता है। जहाँ से वे लोड होकर ऑर्डर देने वाली कम्पनी को भेज दिया जाता है।

इन दोनों उप-विभागों में मज़दूरों की काम की गति ऑटोमैटिक मशीन द्वारा निर्धारित होती है। यह मशीन लगातार बोतल, जार व प्रिफ़ॉर्म उगलती रहती है। सामान्य मोल्डिंग मशीन में एक ऑपरेटर उस मशीन को लगातार चलाता है। लेकिन इन ऑटोमैटिक मशीन को एक बार सेट करने पर वे लगातार चलती रहती हैं जब तक कोई ख़राबी न आये या इसे रोका न जाये। यानी जहाँ सामान्य मोल्डिंग मशीन की गति को मज़दूर कण्ट्रोल कर सकता है, वहीं ऑटोमैटिक मशीन मज़दूर के काम की गति को कण्ट्रोल करती है। मज़दूर को ऑटोमैटिक मशीन की गति के अनुसार काम करना पड़ता है। ऐसे में अगर किसी मज़दूर को बाथरूम जाना हो या खाना खाने जाना हो तो उसे दूसरे मज़दूर को अपनी जगह काम करने के लिए बोलना पड़ता है। जब वह मज़दूर वापस आयेगा, तब ही मशीन पर बैठा मज़दूर खाना खाने जा सकता है। इसलिए ब्रेक पर गये मज़दूर को जल्दी से अपना काम निपटाकर मशीन पर जाना पड़ता है। मज़दूरों को लगातार हाथ चलाना पड़ता है। उन्हें आराम का थोड़ा भी मौक़ा नहीं मिल पाता। ऐसे में मज़दूर सोचता है कि ये 24 घण्टे लगातार बोतल उगलने वाली मशीन की वजह से उनका काम थकाऊ और कठिन है। वह इस काम के बोझ के लिए टेक्नोलॉजी को ज़िम्मेदार मानते हैं। लेकिन यह सोच ग़लत है।

विकसित टेक्नोलॉजी के चलते पहले जो उत्पादन 12 घण्टे में होता था आज वह उत्पादन 5 से 6 घण्टे में ही हो जाता है। इसका मतलब है कि आज मज़दूरों के काम के घण्टे कम करने के साथ उनके बेहतर जीवन जीने के लिए वेतन को बढ़ा दिया जाना चाहिए। लेकिन होता इसका ठीक उल्टा है।

कम्पनी अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए मज़दूरों के काम के घण्टों को बढ़ाती है और कम समय में ज़्यादा उत्पादन करवाने की कोशिश में रहती है। कम समय में ज़्यादा से ज़्यादा काम लेने के लिए कम्पनी ज़्यादा स्पीड से चलने वाली मशीन इस्तेमाल करती है। मशीनों की स्पीड बढ़ाकर पूँजीपति मज़दूरों से 8 घण्टे में 10 से 12 घण्टे का प्रोडक्शन लेती है। मुनाफ़े के नींव पर टिके समाज में विज्ञान व टेक्नोलॉजी से लोगों का जीवन स्तर उन्नत करने के बदले उससे मुनाफ़ा कमाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। काम के घण्टे कम करने के बदले उसे लगातार बढ़ाया जाता है।

तीसरा विभाग स्टोर सेक्शन है जहाँ बोतल, जार व प्रिफ़ॉर्म को स्टोर किया जाता है और यहीं से लोडिंग भी होती है। इस सेक्शन में 9-10 मज़दूर कैज़ुअल के तौर पर काम करते हैं। जब ज़्यादा मज़दूरों की ज़रूरत होती है तब दिहाड़ी पर मज़दूरों को रखा जाता है। स्टोर सेक्शन में बॉक्स में रखे माल को सीढ़ी जैसी संरचना में सेट किया जाता है। इस संरचना की ऊँचाई 35 से 40 फीट होती है। बॉक्स के गत्ते कमज़ोर होते हैं। उन पर बार-बार चढ़ने-उतरने से वे नरम पड़ जाते हैं। ऐसे में मज़दूरों के सन्तुलन खोकर गिरने की सम्भावना बनी रहती है। सुरक्षा के नाम पर उन्हें निर्माण क्षेत्र में इस्तेमाल होने वाला हेलमेट दिया जाता है जिसकी स्थिति ख़राब होती है। किसी का बेल्ट टूटा हुआ होता है तो कोई हेलमेट किसी के सिर पर फिट ही नहीं हो पाता। झुकने पर वह हेलमेट नीचे गिर जाता है। इसलिए मज़दूर उसे नहीं पहनते हैं। स्टोर में कोई खिड़की नहीं है। इस कारण से स्टोर में घुटन-भरा माहौल बना रहता है। मज़दूरों को गर्मियों में बहुत गर्मी और जाड़ों में बहुत ठण्ड सहन करके काम करना पड़ता है। पूरे स्टोर के लिए सिर्फ़ एक हैलोजन लाइट है। मज़दूरों को स्टोर में इसी कम रोशनी में काम करना पड़ता है। इस कम्पनी में कोई लोडिंग प्लेटफ़ॉर्म नहीं है। इसलिए मज़दूरों को ज़मीन से बॉक्स उठाकर ट्रेलर में लोड करना पड़ता है। जब ज़्यादा वज़न का काम होता है या कट्टों को लोड करना होता है, तब फ़ोर्क मशीन का इस्तेमाल किया जाता है। हाल ही में इस कम्पनी में एक मज़दूर को फ़ोर्क मशीन से सीने पर चोट लगी। उसके सीने की पसली फ़्रैक्चर हुई। उसके बाद वह गेट पास लेकर घर चला गया। कम्पनी ने न तो उसका दवा इलाज किया, ना ही उसे इलाज के लिए पैसे दिये। जितने दिन वह इलाज के लिए छुट्टी पर रहा उसे वेतन भी नहीं दिया गया। इस कम्पनी में ई.एस.आई. की सुविधा भी नहीं है। सिडकुल में आये दिन जो मज़दूरों के साथ दुर्घटनाएँ होती हैं, उसे इसी तरीक़े से निपटाया जाता है। कम्पनी के लिए मज़दूर एक काग़ज़ के ग्लास के समान है, जिसके इस्तेमाल होने पर या ख़राब हो जाने पर फेंक दिया जाता है। मशीन ख़राब होने पर उसकी मरम्मत कर ठीक किया जाता है लेकिन मज़दूर को सीधे बाहर का रास्ता दिखाया जाता है।

इतने कठिन काम के लिए यहाँ के मज़दूरों को कितना वेतन मिलता है? पैकेजिंग डिपार्टमेण्ट के मज़दूरों को 12 घण्टे 30 दिन के लिए पी.एफ़. के पैसे काटकर 11,500/- दिया जाता है। लोडिंग डिपार्टमेण्ट के मज़दूर को पी.एफ़. के पैसे काटकर 12,500/- मिलता है। पैकेजिंग के मज़दूरों को खाना खाने का 30 मिनट का ब्रेक और 10 मिनट चाय का ब्रेक भी पूरा नहीं मिल पाता है। कई बार माल चेक करने वाला मज़दूर मशीन से फ़्री नहीं हो पाता है जिसके चलते उसे चाय भी नसीब नहीं हो पाती है। इस कम्पनी में वेतन कैश में दिया जाता है और पे-स्लिप या वेतन स्लिप नहीं दी जाती। बैंक के काग़ज़ जमा करने के बावजूद रजिस्टर पर दस्तख़त करा कर वेतन दिया जाता है।

इतने कठिन काम की परस्थिति के चलते यहाँ मज़दूर बहुत लम्बे टाइम के लिए काम नहीं करते हैं। लेकिन इस कम्पनी में 8 से 10 साल से काम करने वाले कुछ मज़दूर हैं जिनको कम्पनी ने आज तक पर्मानेण्ट नहीं किया है। वे अपनी बढ़ती उम्र के चलते या किसी मजबूरी के चलते काम नहीं छोड़ते हैं। श्रम क़ानून के तहत अगर कोई मज़दूर 240 दिन किसी कम्पनी में लगातार काम करता है तो उसे पर्मानेण्ट करना चाहिए। लेकिन यहाँ पर्मानेण्ट करना तो दूर उनके वेतन में भी कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई है। वे ठेकेदार के तहत कैज़ुअल मज़दूर के तौर पर ही काम कर रहे हैं। यह श्रम क़ानूनों का खुला उल्लंघन है।

इस कम्पनी में अगर प्रोडक्शन कम होता है तब मज़दूरों को ब्रेक दिया जाता है। फ़ैक्टरी गेट पर खड़ा ठेकेदार बोलता है कि 'लड़के पूरे हो गये हैं'। उसे काम से नहीं निकाला जाता है बस उस दिन के लिए उसे काम देने से मना कर दिया जाता है। मज़दूर फिर लेबर चौक पर काम की तलाश में जाता है कि कहीं आज के दिन बिना कमाये घर ना लौट जाना पड़े। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है कि वह मज़दूर कितने सालों से उस कम्पनी में काम कर रहा है। इसलिए इस कम्पनी के मज़दूर काम शुरू होने के आधे घण्टे पहले ही कम्पनी गेट पर आकर ठेकेदार को अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। जो देर से आते हैं उन पर ख़तरा मँडराता है कि अगर आज मज़दूरों की ज़रूरत कम होगी तो उन्हें वापस कर दिया जायेगा।

इस कम्पनी में काम की दो शिफ़्ट चलती हैं। डे शिफ़्ट सुबह 8 बजे से रात 8 बजे तक और नाइट शिफ़्ट रात के 8 बजे से सुबह 8 बजे तक चलती है। मज़दूरों की शिफ़्ट सप्ताह में बदलती है। यानी एक सप्ताह डे शिफ़्ट और अगला सप्ताह नाइट शिफ़्ट। लेकिन होता यह है कुछ मज़दूरों को महीनेभर या उससे ज़्यादा समय के लिए नाइट शिफ़्ट करना पड़ता है तो किसी को लगातार डे शिफ़्ट। हर शिफ़्ट में कुछ पूराने मज़दूरों का होना ज़रूरी होता है। जो नये मज़दूरों को काम सिखायें और उन पर नज़र रखें व काम ठीक से करवायें। अगर काम ख़राब होता है तो सुपरवाइज़र साथ काम कर रहे पुराने मज़दूर को डाँटता है। धान कटाई के समय में मज़दूरों की संख्या कम हो जाती है। ऐसे में जो पुराने मज़दूर काम पर होते हैं ठेकेदार उन्हें डबल शिफ़्ट भी करने को बोलता है। मज़दूर मना कर सकता है लेकिन अपने आर्थिक मजबूरी के चलते 24 घण्टे काम करता है।

इस कम्पनी में काम करने वाले मज़दूर रोज़ाना कितना समय अपनी आजीविका कमाने में ख़र्च करते हैं? कम्पनी में काम के 12 घण्टे के अलावा आधे घण्टे पहले रिपोर्ट करके फ़ैक्टरी गेट पर ख़ाली बैठना, आने-जाने का समय और टिफ़िन के लिए खाना बनाने का समय। कुल समय जोड़ा जाये तो अपनी रोज़ाना की आजीविका कमाने के लिए एक मज़दूर 24 घण्टे में से लगभग 15 से 16 घण्टे ख़र्च करता है।

टीपैक कम्पनी में मज़दूरों से बहुत ख़राब तरीक़े से बात की जाती है। सुपरवाइज़र मज़दूरों को डाँटकर, हड़काकर या गाली देते हुए बात करते हैं। इस कम्पनी के इतिहास में लोडिंग सेक्शन में मज़दूर को गाली देने पर सुपरवाइज़र को पीटने की घटना घट चुकी है। कई दिहाड़ी मज़दूर इसी ख़राब व्यवहार के चलते काम छोड़कर चले जाते हैं। इसी वजह से लेबर चौक पर यह कम्पनी बदनाम है और इस इलाक़े के पुराने दिहाड़ी मज़दूर काम नहीं मिलने पर भी इस कम्पनी में जाने को तैयार नहीं होते हैं।

हरिद्वार सिडकुल में ऐसी और भी प्लास्टिक की वेण्डर कम्पनियाँ हैं जिनमें टीपैक कम्पनी से कम मज़दूर काम करते हैं। उनमें भी इसी प्रकार से मज़दूरों को निचोड़कर काम लिया जाता है। जैसे टू ब्लू कम्पनी, फ्रेश पेट कम्पनी, एपेक्स प्राइवेट लिमिटेड आदि। टीपैक पैकेजिंग कम्पनी की यह रिपोर्ट एक झलक है, जो आज के तमाम औद्योगिक क्षेत्र में मज़दूरों की दुर्दशा को दर्शाती है।

‘आधुनिक रोम’ में ग़ुलामों की तरह खटते मज़दूर

● सनी

गुड़गाँव के इफ़्को चौक मेट्रो स्टेशन से गुड़गाँव शहर (या भाजपा द्वारा किये नामकरण के अनुसार गुरुग्राम) को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आप किसी जादुई नगरी में आ गये हों।

आधुनिक स्थापत्यकला (तकनीकी भाषा में कहें तो ‘उत्तरआधुनिक स्थापत्यकला’) के एक से एक नमूनों में शीशे-सी जगमगाती मीनारों की आड़ी-तिरछी आकृतियों से शहर की रंगत अलग ही लगती है। पर इस जगमग शहर की सड़कों पर मज़दूरों को अपने परिवारों के साथ घूमने की इजाज़त नहीं, इस शहर के पार्कों में हम जा नहीं सकते, भले ही सड़कों को चमकाने और पार्कों को सुन्दर बनाने की ज़िम्मेदारी हमारे ऊपर ही आती हो। अपार्टमेण्ट-शॉपिंग मॉलों, आईटी पार्क, सॉफ़्टवेयर कम्पनियों की इमारतों में भी हमारे मज़दूर भाई ही खटते हैं। उनमें से अधिकतर भी इस ‘आधुनिक रोम’ के उजरती ग़ुलाम ही हैं। मेट्रो से उतरकर मज़दूरों को ईको गाड़ियाँ और तिपहिया वाहन मवेशियों की तरह ठूँसकर उन इलाक़ों में ले जाते हैं जहाँ औद्योगिक इलाक़ा शुरू होता है। इसके आसपास के गाँवों में मज़दूरों के लिए रहने के लॉज हैं। हरियाणा से राजस्थान तक फैली उद्योग पट्टी पर जो गाँव बसते थे वहीं अब मज़दूरों की आधुनिक बस्तियाँ हैं।

इफ़्को चौक मेट्रो स्टेशन दिल्ली-जयपुर राजमार्ग पर पड़ता है। इस राजमार्ग के साथ-साथ ही आधुनिक उद्योगों की पट्टी फैली है जो जयपुर से भी आगे मुम्बई तक चली जाती है। मज़दूरों की बड़ी आबादी इस औद्योगिक पट्टी में अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए आती है। नौजवानों की आशा रहती है कि अपने तरुण शरीर को मशीनों में झोंककर वे अपने जीवन के नर्क से मुक्ति पायेंगे। कुछ सोचते हैं कि गाँव में एक घर और दुकान बना लेंगे। कई मज़दूर शहर में मकान लेने और फिर अपना ही धन्धा शुरू करने का सपना देखते हैं। पर ये सपने टूटते और बिखरते रहते हैं। लगातार ये सपने मशीन रोलर पर चपटी होती स्टील की पट्टी की तरह चपटे होते रहते हैं। यह तरुणाई केवल मालिकों के धन में तब्दील होती रहती है। अधिकतर मज़दूर अकेले अपने दम पर आज़ाद होने का सपना देखते हैं पर गुडगाँव के शक्ति नगर, हरिनगर से लेकर मानेसर, धारूहेड़ा और इस औद्योगिक पट्टी के नये केन्द्रों के आसपास बसे लॉजों में सालों-साल के लिए फँस जाते हैं जबतक कि उनका शरीर और पिसने लायक़ नहीं रह जाता। इन सस्ते लॉजों में भी लॉज मालिक और दुकानदार मज़दूरों से ग़ुलामों सरीखा व्यवहार करते हैं। इन लॉज मालिकों और फ़ैक्टरी मालिकों में भी आपसी एकता होती है।

इस औद्योगिक पट्टी में ऑटोमोबाइल सेक्टर की प्रमुख भूमिका है। ऑटो उद्योग का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 7.1 प्रतिशत और मैन्युफ़ैक्चरिंग में 49 प्रतिशत योगदान है। कुल ऑटो सेक्टर का 50 प्रतिशत उत्पादन हरियाणा की औद्योगिक पट्टी में ही होता है। मारूति, हीरो, होण्डा और तमाम ऑटो कम्पनियों के प्लाण्ट भिवाड़ी से लेकर धारूहेड़ा, गुडगाँव तक फैले हैं। नीमराना में बाक़ायदा एक जापानी ज़ोन है और घिलोठ में कोरियन ज़ोन है जहाँ इन देशों की कम्पनियों को ही निवेश का अधिकार दिया गया है। ऑटो सेक्टर में उत्पादन की प्रणाली में भी पहले के मुक़ाबले अन्तर आया है। मदर कम्पनी के मातहत काम करने वाली सैकड़ों वेण्डर कम्पनियाँ होती हैं। एक चार पहिया गाड़ी में 2000 से भी ऊपर पार्ट्स होते हैं। यही पार्ट्स मारूति, हीरो और होण्डा सरीखी मदर कम्पनी के लिए उनके मातहत काम करने वाली वेण्डर कम्पनियाँ बनाती हैं। मसलन, मारूति के नीचे ऑटोफ़िट, सनबीम, रिको, मुन्जल शोवा सरीखी बडी वेण्डर कम्पनियाँ हैं। पहले संस्तर की वेण्डर कम्पनियों के नीचे भी उनसे निचले स्तर की कई वेण्डर कम्पनियाँ मौजूद हैं। सबसे नीचे के पायदान पर आने वाली वेण्डर कम्पनियों में 20-30 मज़दूर भी काम करते हैं और यहाँ मज़दूरों के काम करने की स्थितियाँ सबसे भयंकर हैं। सबसे निचले पायदान की वेण्डर कम्पनियों को कच्चे माल की आपूर्ति करने वाली कम्पनियाँ सिर्फ़ गुड़गाँव में ही नहीं बल्कि पूरे हिन्दुस्तान में फैली हैं। सस्ती श्रमशक्ति को निचोड़ने व सस्ते कच्चे माल और मज़दूरों की कारख़ाना आधारित एकता को तोड़ने के लिए ही दुनियाभर के पूँजीपतियों ने उत्पादन की प्रक्रिया को बिखरा दिया है और बड़ी फ़ैक्टरियों को तोड़कर छोटी-छोटी फ़ैक्टरियों में बिखरा दिया है। एक कार बनाने वाले कारख़ाने के नीचे सैकड़ों वेण्डर कम्पनियों के मज़दूर काम करते हैं जो शायद यह भी ठीक से नहीं जानते कि उनके कारख़ाने में बने कल-पुर्ज़े मारूति, होण्डा, टाटा, हीरो में से किसकी गाड़ियों में लगे हैं। गुडगाँव मानेसर-धारूहेड़ा-खुशखेड़ा तक फैली उद्योग पट्टी में ऑटो सेक्टर में 1000 से भी ऊपर इकाइयों में 10 लाख से भी ऊपर मज़दूर काम करते हैं।

मोदी सरकार ने पब्लिक सेक्टर को तबाह कर निजीकरण की आँधी चलायी है तो दूसरी तरफ़ कांग्रेस सरकार के काल में शुरू की गयी दिल्ली-मुम्बई औद्योगक पट्टी को और अधिक व्यवस्थित किया है। 2014 से ही इस पट्टी में देशी और विदेशी पूँजी का निवेश बढ़ता रहा है। 2022 में महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक पट्टी के तहत 754 एकड़ के 138 प्लॉट कम्पनियों को बाँटे गये हैं जिन्होंने यहाँ 16 हज़ार करोड़ से अधिक के निवेश का वायदा किया है। इनमें अमूल व टाटा केमिकल्स जैसी देशी कम्पनियों के साथ रूस, चीन और दक्षिणी कोरिया की कम्पनियाँ भी हैं। देशभर में ऐसी कई औद्योगिक पट्टियाँ बनायी जा रही हैं। बेंगलूरु-मुम्बई इण्डस्ट्रियल कॉरिडोर, चेन्नई-बेंगलूरु इण्डस्ट्रियल कॉरिडोर, अमृतसर-कोलकाता इण्डस्ट्रियल कॉरिडोर, विशाखापत्तनम-चेन्नई इण्डस्ट्रियल कॉरिडोर भी विकसित हो रहे हैं। ये

देशी और विदेशी पूँजी के लिए मज़दूरों की श्रम शक्ति का दोहन करने के लिए बसाये जा रहे आधुनिक क्षेत्र हैं। ये ग्लोबल वैल्यू चेन का एक बड़ा हिस्सा हैं यानी ग्लोबल असेम्बली लाइन का एक हिस्सा हैं।

कोविड काल में पूँजीपति वर्ग के नुक़सान की भरपाई के लिए भी मोदी सरकार इस तरह के क़दम अब तेज़ी से उठा रही है। कोविड के बाद से उत्पादन अब फिर से महामारी से पहले के स्तर पर पहुँच रहा है। कोविड काल में छायी मन्दी को तोड़ते हुए ऑटो उद्योग में भी तेज़ी आयी है। भारत के ऑटो सेक्टर में अप्रैल 2021 से मार्च 2022 तक 2 करोड़ 93 लाख वाहन निर्मित हुए। यह पिछले साल के मुक़ाबले अधिक है। मुनाफ़ा निचोड़ने के लिए ऑटो कम्पनियों ने भी लोहे के हाथों से मज़दूरों को ‘अनुशासित’ किया है। जेएनएस, सनबीम, बेलसोनिका, मुन्जाल शोवा से लेकर नपीनो और दर्जनों कम्पनियों में पूँजीपतियों और उनके प्रबन्धन ने मज़दूरों के माँगपत्रकों को मानने से इन्कार किया है, छँटनी की है और यूनियनों को तोड़ने का काम किया है। हर बड़ी औद्योगिक कम्पनी और वेण्डर कम्पनी ने यह किया है। मारूति से लेकर हीरो तक और रीको से लेकर सनबीम तक यह प्रक्रिया जारी है। मारूति और उसकी 500 से अधिक वेण्डर कम्पनियाँ हों या होण्डा और उसकी वेण्डर कम्पनियाँ हों, सभी जगह यही हालत है। गुड़गाँव, मानेसर, धारूहेड़ा, खुशखेड़ा से लकर भिवाड़ी, नीमराना का भी क़िस्सा यही है। इन फ़ैक्टरियों में मज़दूरों को किस तरह निचोड़ा जाता है, ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की एक रिपोर्ट में इसकी एक झलक मिलती है :

“पूरे ऑटो सेक्टर के मुनाफ़े में मज़दूरी का हिस्सा नगण्य है क्योंकि मौजूदा तकनीक के हिसाब से आज ऑटो मज़दूर अपने 8 घण्टे के कार्यदिवस में केवल 1 घण्टे 12 मिनट के काम का वेतन पाता है। बाक़ी 6 घण्टे 48 मिनट का काम वह पूँजीपतियों के लिए बिना भुगतान के करता है। इसी से साफ़ होता है कि आज एक मज़दूर की उत्पादकता की दर कितनी बढ़ चुकी है और पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों का किस क़दर शोषण किया जाता है।

वहीं दूसरी तरफ़ इनकी कार्यस्थितियाँ बेहद कठिन होती हैं जिसमें सबसे बड़ी बात यह है कि वे एकदम तानाशाही जैसे माहौल में काम करते हैं। मशीनों की रफ़्तार बढ़ाकर उनसे बेतहाशा काम लिया जाता है। इसका एक उदाहरण मारूति सुज़ुकी का मानेसर प्लाण्ट है जहाँ इंजन शॉप की ब्लॉक लाइन में एक मज़दूर को अपने काम के लिए 46 से 52 सेकेण्ड में ही 13 अलग-अलग प्रक्रियाएँ पूरी करनी होती हैं। वहीं कम तनावयुक्त मानी जाने वाली सीट असेम्बली लाइन पर अलग-अलग कन्वेयर बेल्ट में आने वाली कारों पर सीट लगायी जाती है जिसमें 30 अलग-अलग मॉडलों की सीट लगानी होती है। सीट लगाने के लिए एक मज़दूर को कम्पनी द्वारा 36 सेकेण्ड तय किये गये थे किन्तु श्रमिकों के दबाव के कारण अब ये 50 सेकेण्ड हैं जिसमें लगभग 15 प्रक्रियाएँ पूरी करनी होती हैं। औसतन मज़दूर 8:30 घण्टे की शिफ़्ट में 530 कारों में सीट लगाते हैं, मतलब मज़दूरों को एक मशीन की तरह लगातार इन कामों को करना होता है, इन्हें दोहराते रहना होता है और गति बरक़रार रखनी होती है।”

इस तेज़ी के कारण ही मज़दूरों के साथ अक्सर दुर्घटनाएँ होती रहती हैं जिनमें अंग-भंग भी हो जाते हैं। ‘सेफ़ इन इण्डिया’ नामक एनजीओ की रिपोर्ट बताती है कि फ़ैक्टरियों में होने वाली दुर्घटनाओं का शिकार हुए दो-तिहाई मज़दूरों के ईएसआई कार्ड नहीं बने थे और इस वजह से इन दुर्घटनाओं के बाद उन्हें और उनके परिवार वालों को ईएसआई की कोई सुविधा नहीं मिली जबकि उनके मालिकों ने इसका पैसा काटा था। इन दुर्घटनाओं का शिकार अधिकतर जवान मज़दूर ही होते हैं। रिपोर्ट के अनुसार 62 प्रतिशत मज़दूर 30 साल से कम उम्र के थे। वहीं युवा मज़दूर जो अपने शरीर की ताक़त के दम पर इस नर्क से बाहर निकलने का ख़्वाब देखते हैं उन्हें ही सबसे अधिक इस राक्षसी तंत्र का शिकार होना पड़ता है।

इस विशालकाय तंत्र में मज़दूर अकेला लड़कर जीत ही नहीं सकता है। इस तंत्र के ख़िलाफ़ हम अकेले नहीं जीत सकते हैं बल्कि सामूहिक संघर्ष ही है जिसके दम पर लड़कर हम जीत सकते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया के बिखरे होने की वजह से आज एक-एक कारख़ाने में चलने वाले संघर्षों को जीत पाना बेहद मुश्किल हो गया है। एक ही कारख़ाने में मज़दूरों को कई श्रेणियों में बाँट दिया गया है। परमानेण्ट, ठेका और कैज़ुअल में बँटे मज़दूर एकजुट नहीं हो पाते हैं। इन दोनों क़िस्म के विभाजन की दीवारों को तोड़कर ही आज का कार्यभार पूरा किया जा सकता है जो है कारख़ाना-केन्द्रित यूनियनों के अतिरिक्त पूरे के पूरे ऑटो सेक्टर के सभी मज़दूरों की एक सेक्टरगत–पेशागत यूनियन बनाना और ठेका–कैज़ुअल मज़दूरों और स्थायी मज़दूरों के बीच फ़ौलादी एकजुटता क़ायम करना।

आज पीछे मुड़कर 2005 में हुए होण्डा के मज़दूरों के आन्दोलन से अब तक के दौर को देखें तो 17 साल हो गये हैं। इतने साल यह सबक़ सीखने के लिए काफ़ी हैं कि जबतक हम अपनी आपसी एकता क़ायम नहीं करते हैं तब तक फ़ैक्टरी प्रबन्धन, श्रम विभाग और पुलिस-प्रशासन के गठजोड़ का मुक़ाबला नहीं कर सकते हैं। मज़दूरों के श्रम की लूट को और अधिक सुगम बनाने के मक़सद से ही मोदी सरकार श्रम क़ानूनों को हटाकर श्रम संहिताएँ लागू कर रही है। राजस्थान में गहलोत की सरकार आये या वसुन्धरा की, हरियाणा में खट्टर की सरकार बने या हुड्डा की, या यूपी में योगी आये या अखिलेश या बंगाल में ममता आये या मज़दूर वर्ग की ग़द्दार वाम मोर्चा की सरकार, सभी पूँजीपतियों की चाकरी करते हैं। इस या उस चुनावी मदारी के बहकावे में आना हमें छोड़ना होगा। मज़दूर आन्दोलन में मालिकों की दलाली करने वाली केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें और अनेक ‘इन्क़लाबी और सहयोग’ केन्द्रों सरीखे अवसरवादी संगठनों को दरकिनार कर स्वतंत्र ट्रेड यूनियनों में सही नेतृत्व विकसित करना ही आज इस औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों के समक्ष एकमात्र रास्ता है। यही इस ‘आधुनिक रोम’ की दीवारों को गिराने की कुंजीभूत कड़ी है।

●

दिल्ली में नगर निगम चुनाव में 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' द्वारा 'आप' और 'भाजपा' के ख़िलाफ़ व्यापक बहिष्कार अभियान!

(पेज 3 से आगे)

यूनियन 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' ने इस बढ़ोत्तरी को नकार दिया था और अपनी हड़ताल को जारी रखा था। एक तरफ़ जब तमाम पैंतरों से इस हड़ताल को तोड़ने में दिल्ली सरकार विफल रही तो उसने भाजपा से मिलीभगत करके उपराज्यपाल के ज़रिए दमनकारी हेस्मा क़ानून थोप दिया था। इसके जवाब में यूनियन ने हड़ताल को स्थगित कर हाई कोर्ट में मुक़दमा दायर किया था जिसके ज़रिए यूनियन का मक़सद न्यायपालिका के असली चरित्र को व्यापक मेहनतकश जनता में बेनक़ाब करना था। साथ ही, हड़ताल को क़ानूनी कार्रवाई को मुक़ाम पर पहुँचाकर फिर से शुरू करने की योजना को यूनियन की कार्यकारिणी ने पारित किया था। हड़ताल को स्थगित किये जाने के बाद, स्त्री कामगारों को डराने-धमकाने के मक़सद से 884 कामगारों को काम से निकाल दिया गया। 884 महिलाकर्मियों की बर्ख़ास्तगी का कारण इस सरकार ने महिलाओं के हड़ताल में शामिल होने को बताया है। इस ग़ैर-क़ानूनी बर्ख़ास्तगी के ख़िलाफ़ यूनियन द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय में अपील दायर की गयी है और यह मसला अभी न्यायाधीन है। उच्च न्यायलय ने फ़िलहाल बर्ख़ास्त 884 महिलाकर्मियों के स्थान पर किसी भी नयी भर्ती पर रोक लगायी हुई है, जो कि एक अहम जीत थी और जिसके कारण आम आदमी पार्टी की सरकार को पर्याप्त दिक़्क़तों का सामना करना पड़ रहा है।

यूनियन की अध्यक्षा शिवानी कौल ने बताया कि "38 दिनों तक चली इस हड़ताल ने महज़ आम आदमी पार्टी की दिल्ली सरकार और भाजपा की केन्द्र सरकार को ही चुनौती नहीं दी, बल्कि समूची पूँजीवादी व्यवस्था को भी इसने बेनक़ाब किया। इस हड़ताल से दिल्ली व केन्द्र सरकार दोनों ही भयाक्रान्त थे। अपनी लाख कोशिशों के बावजूद केन्द्र की भाजपा सरकार और दिल्ली में केजरीवाल की आप सरकार इस हड़ताल को तोड़ने में नाकामयाब रहे। अन्ततः, उन्होंने अपने इस डर में ही आपसी सहमति बनाकर उपराज्यपाल के ज़रिए दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों की इस अद्वितीय और ऐतिहासिक हड़ताल पर एसेंशियल सर्विसेज़ मेण्टेनेंस एक्ट थोप दिया। यह दोनों ही पार्टियाँ आँगनवाड़ीकर्मियों की दिल्ली की जनता तक पहुँच को अब तक भले ही नज़रन्दाज़ करती आ रही हों लेकिन नगर निगम चुनावों के मद्देनज़र इनके लिए अब ऐसा कर पाना हम असम्भव कर देंगी। दिल्ली की हर एक आँगनवाड़ीकर्मी अपने इलाक़ों में इन दोनों ही दोमुँही पार्टियों के प्रत्याशियों-कार्यकर्ताओं के प्रवेश पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय कर चुकी हैं। आज वोट की राजनीति के लिए भले ही यह दोनों पार्टियाँ एक दूसरे पर कीचड़ उछालने का काम कर रही हैं, लेकिन जहाँ कहीं भी मज़दूरों-कामगारों के दमन की बात आती है, इन दोनों ही पार्टियों की यारी देखते बनती है। इस नगर निगम चुनाव में दिल्ली की 22,000 आँगनवाड़ीकर्मी ही नहीं, बल्कि उनके परिवार-दोस्त-सम्बन्धी भी इन दोनों ही पार्टियों के सक्रिय बहिष्कार का ऐलान करते हैं। हम भाजपा और आप का दिल्ली नगर निगम चुनावों में पूर्ण बहिष्कार और उनकी वोटबन्दी का आन्दोलन पूरी दिल्ली में चलायेंगी और पूरी दिल्ली की जनता को इन दोनों झूठी, बेईमान और भ्रष्टाचारी पार्टियों की असलियत से अवगत करायेंगी।"

आगे उन्होंने यह भी कहा कि "तमाम चुनावबाज़ पार्टियों ने आँगनवाड़ीकर्मियों को वोट बैंक और अपने प्रचार कार्यकर्ता के तौर पर हमेशा ही इस्तेमाल किया है। इस तथ्य से तो सभी पार्टियाँ परिचित हैं कि स्कीम वर्करों की पहुँच इस देश के हर गली-कूचे में है। अपनी इसी ताक़त का इस्तेमाल कर दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मी उन तमाम पार्टियों को निशाना बनायेंगी जिन्होंने अपने लोकतांत्रिक अधिकारों को लेकर संघर्षरत महिलाकर्मियों की माँगों की सुनवाई करने के बजाय उन्हें काम से ही बेदख़ल कर दिया। बहिष्कार करना हमारा ऐसा अधिकार है, जिसे कोई हमसे छीन नहीं सकता है और अगर हमारी पुनःबहाली की माँग को नज़रन्दाज़ किया जाता है तो दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मी दोबारा से हड़ताल पर जायेंगी। इस बार हम अकेली नहीं होंगी। दिल्ली सरकार के तहत आने वाले तमाम विभागों के कर्मचारी हमारे साथ होंगे। जल बोर्ड, डीटीसी, गेस्ट टीचर्स भी दिल्ली सरकार के मज़दूर-कर्मचारी विरोधी रवैये से तंगहाल हैं। सरकार को मज़दूरों-कर्मचारियों की असली ताक़त दिखाने के लिए यदि फिर से हड़ताल का रास्ता अख़्तियार करना पड़े तो हम वो भी करने को तैयार हैं।"

● बिगुल संवाददाता

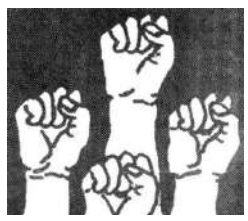

...सनबीम (गुड़गाँव) में संघर्ष की सम्भावनाएँ

(पेज 3 से आगे)

हुए चेतावनी भी दे दी गयी है कि अगर समय रहते हुए समस्याओं का समाधान नहीं किया गया तो मज़दूरों के आक्रोश के लिए शासन-प्रशासन स्वयं ज़िम्मेदार होगा। सनबीम प्रबन्धन को दिये गये डिमाण्ड नोटिस की प्रमुख माँगे इस प्रकार हैं : 1. जिन ठेका श्रमिकों को फ़ैक्टरी में कार्य करते हुए 240 दिन की अवधि हो चुकी है उन सभी ठेका श्रमिकों को सीधे स्थायी किया जाये। इसलिए ठेका प्रथा उन्मूलन व विनियमन एक्ट 1970 और 1971 (संशोधन) के तहत के प्रावधान को लागू करवाया जाये; 2. स्थाई काम पर स्थाई रोज़गार के क़ानूनी प्रावधान को लागू करवाया जाये; 3. समान काम पर समान वेतन के क़ानूनी प्रावधान को लागू किया जाये; 4. फ़ैक्टरी में कार्य करने वाले प्रत्येक श्रमिक को पहचान पत्र दिया जाये तथा उस पहचान पत्र में श्रमिक की शॉप का नाम, उसकी मशीन का नाम तथा मशीन पर किस पार्ट का उत्पादन होता है, इसका विवरण दर्ज कर दिया जाये; 5. किसी भी श्रमिक का स्थानान्तरण (एक फ़ैक्टरी से दूसरी फ़ैक्टरी, एक विभाग से दूसरे विभाग में) करने से पहले फ़ैक्टरी प्रबन्धन द्वारा श्रमिक की सहमति लेना अनिवार्य है; 6. फ़ैक्टरी प्रबन्धन बोनस अधिनियम 1965, डबल ओवर टाइम के क़ानूनी प्रावधान (फ़ैक्टरी एक्ट 1948) आठ घण्टे के कार्य का प्रावधान आदि श्रम क़ानूनों का पालन किया जाये; 7. साप्ताहिक अवकाश रविवार को बरक़रार रखा जाये। अगर किसी कारणवश साप्ताहिक अवकाश में प्रबन्धन फेरबदल करता है तो श्रमिकों की सहमति लेना अनिवार्य हो; 8. मशीनों पर कार्य के दौरान मशीनों को बाईपास (सुरक्षा की दृष्टि से) ना किया जाये। असुरक्षा की स्थिति में श्रमिकों से मशीनों पर उत्पादन कार्य ना करवाया जाये; 9. फ़ैक्टरी के अन्दर एक सुरक्षा कमेटी का गठन किया जाये जिसमें श्रमिकों के बराबर के प्रतिनिधियों को सेफ़्टी कमेटी में लिया जाये; 10. फ़ैक्टरी प्रबन्धन द्वारा छः माह (पिछले) के दौरान जिन ठेका श्रमिकों को गुमराह करके ज़बर्दस्ती हिसाब-किताब देकर फ़ैक्टरी से निकाला है उन सभी श्रमिकों को फ़ैक्टरी में लगातार सेवारत मानते हुए वेतन सहित वापिस लिया जाये; 11. सभी ठेका श्रमिकों को उनकी नियुक्ति (जॉइनिंग) से लेकर आज तक किये गये ओवरटाइम के डबल भुगतान के क़ानूनी प्रावधान को मानते हुए पिछला सारा ओवरटाइम का भुगतान किया जाये। क्योंकि कम्पनी में ठेका श्रमिकों को सिंगल ओवरटाइम दिया जा रहा है।

लेकिन सवाल यह है कि क्या सचमुच में हम अपने संघर्ष को आगे ले जा पायेंगे? फ़िलहाल ठेका मज़दूरों ने संघर्ष करने की शुरुआत कर दी है। पहली सफल रैली के बाद मज़दूरों में मज़बूती भी आयी है और सनबीम के पुराने निकाले गये मज़दूर भी सम्पर्क करने लगे हैं।

संघर्ष का आगे का रास्ता इसकी चुनौतियाँ व समस्याएँ

एक, सनबीम गुड़गाँव के ठेका मज़दूरों का नेतृत्व समान माँगों के तहत सनबीम कम्पनी के चारों प्लाण्टों में एकता को विस्तार देने की कार्रवाई पर मीटिंगों में बात तो कर रहा है, लेकिन इसे लागू करने में बहुत ही ढुलमुल रवैये का शिकार है। दूसरा, ठेका मज़दूरों का नेतृत्व अपने बूते संघर्ष करने के बजाय कभी अपने ही प्लाण्ट की मौक़ापरस्त स्थायी मज़दूरों की रजिस्टर्ड यूनियन, जो कि इण्टक से सम्बद्ध है (जो खुले रूप में पूँजीपतियों के चन्दे से चलने वाली और उनके के लिए काम करने वाली कांग्रेस पार्टी से जुड़ी है) के मार्फ़त श्रम विभाग के समक्ष अपना मामला दर्ज करने की सोचती है, लेकिन उसमें सफलता न मिलने पर एटक (जो भाकपा जैसी संशोधनवादी पार्टी से सम्बद्ध है) के ज़रिए श्रम विभाग के समक्ष अपनी शिकायत व कोर्ट केस लगाने की कार्रवाई की तरफ़ जाता है, तो कभी मासा नामक अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी मंच के घटक आईएमके की असफल योजना की ओर जाता है, जिसके अव्यावहारिक फ़ैसलों के नतीजों के कारण मज़दूर ख़ुद ही उसे नकार चुके हैं।

संक्षेप में, ठेका मज़दूरों का नेतृत्व अपनी वैचारिक कमज़ोरी और पिछले संघर्षों के नतीजों से परिचित होने के बावजूद इण्टक और एटक की भूमिका के बारे में कोई सबक़ नहीं निकाल पा रहा है। 2019-22 में होण्डा (मानेसर) के ठेका मज़दूरों की छँटनी वहीं हुई थी। वहाँ की स्थायी यूनियन भी एटक फ़ेडरेशन से सम्बद्ध थी। एटक की उसी प्लाण्ट में यूनियन होने के बावजूद भी ठेका मज़दूरों के पक्ष में कोई असरदार कार्रवाई नहीं कर पायी थी। जुझारू संघर्ष के बावजूद मज़दूरों को मजबूरन हिसाब ही लेना पड़ा था। एटक समेट विभिन्न फ़ेडरेशनों के मंच टी.यू.सी. (जिसमें सी.आई.टी.यू, एच.एम.एस.ए.आई.यू.टी.यू.सी., इण्टक) और उनके अन्तर्गत सम्बद्ध स्थायी मज़दूरों की यूनियनें ठेका मज़दूरों के जुझारू संघर्ष को अर्ज़ियों, सांकेतिक प्रदर्शनों से आगे नहीं ले जा सकी थी। उन्होंने कभी भी मानेसर औद्योगिक क्षेत्र को स्टेजों व मंचों से 'कभी टूल डाउन करने' तो 'कभी चक्का जाम करने' की घोषणाओं के बावजूद कुछ नहीं किया।

सवाल यह है कि सनबीम मज़दूरों के संघर्ष को शिकायतों, माँगपत्रकों, श्रम विभाग के समक्ष वार्ताओं, प्रतीकात्मक आम सभाओं की कार्रवाइयों, एक बार प्रदर्शन करने के आगे ले जाया जाता है या नहीं? अभी तो यही कहा जा सकता है कि एक बार फिर से होण्डा (मानेसर), औमेक्स (धारूहेड़ा), हीरो (गुड़गाँव) के ठेका मज़दूरों की तरह कोर्ट-कचहरी की चक्कर काटने में सीमित रहने के कारण आगे बढ़ने की सम्भावनाएँ लगभग लगातर कम होती जा रही हैं। यही स्थिति ऑटो सेक्टर समेत इस पूरी औद्योगिक पट्टी की है। हिटाची (मानेसर), बेलसोनिका (मानेसर) के ठेका और स्थायी मज़दूरों की भी यही कहानी है। हाल ही में एक बार फिर से ठेका मज़दूरों की छँटनी और वेतन कटौती की गयी है। बेलसोनिका की स्थायी मज़दूर यूनियन को तोड़ने व छँटनी करने के लिए कम्पनी प्रबन्धन यूनियन पर हमले का कोई मौक़ा नहीं चूक रहा है। नपिनो (मानेसर) और मुंजाल शोवा (गुड़गाँव) के स्थायी मज़दूर भी छँटनी का शिकार हो चुके हैं और 2 दर्जन के क़रीब कम्पनियों के उनके माँगपत्रक/समझौता व मामले भी पेण्डिंग चल रहे हैं। सेक्टरगत यूनियन व एकता के अभाव में कारख़ाना-आधारित यूनियनें अकेले अपने दम पर प्रबन्धन को टक्कर दे पाने में अक्षम साबित होती जा रही हैं।

आगे का रास्ता

जब भी कोई छँटनी की घटना सामने आती है तो ठेका मज़दूर या तो कम्पनी की स्थायी मज़दूरों की यूनियन या फिर ऐसी किसी बड़ी छतरी की सहारा ढूँढ़ती हैं, जो पहले ही ठेका मज़दूरों को छोड़ चुकी हैं। स्थायी मज़दूरों की यूनियन अपने अर्थवाद के चलते यानी अपने वेतन-बोनस-भत्ते की माँगों पर ही सीमित रहने के चलते ठेका मज़दूरों का इस्तेमाल करती आयी है। पहले तो वे थोड़ा-बहुत ठेका मज़दूरों को इसलिए प्रबन्धन से दिलाने के लिए कोशिश करती थीं ताकि मज़दूरों की कोई उम्मीद बनी रहे और वे उनका साथ देते रहें। इस बार जब ठेका मज़दूरों के ऊपर आन पड़ी है यानी छँटनी हो रही है तो वह कुछ भी नहीं कर पा रही है। वैसे तो पिछले साल निकाले गये 113 स्थायी मज़दूरों के लिए भी यूनियन और इण्टक कुछ नहीं कर पायी थी, तो ठेका मज़दूर के लिए क्या ही कर पायेगी? बेशक सनबीम के ठेका मज़दूर अपने संघर्ष को चारों प्लाण्टों तक ले जाने के योजना पर सोच रहे हैं, लेकिन इसे लागू करने में वे जितनी तत्परता दिखायेंगे उतना बेहतर होगा। लेकिन ठेका मज़दूरों को सनबीम कम्पनी की सभी मदर और वेण्डर कम्पनियों समेत पूरे ऑटोसेक्टर में समान मुद्दों पर एकजुट संघर्ष का दायरा बढ़ाना होगा। दूसरा, अपने संघर्ष को अपने दम पर स्वतंत्र रूप से बढ़ाना होगा न कि पहले से ठेका मज़दूरों और जुझारू संघर्षों को तिलांजलि दे चुकी यूनियनों, फ़ेडरेशनों या टीयूसी जैसे मंचों की बैसाखियों की और देखने की ज़रूरत है, क्योंकि ये अब ज़मीनी संघर्ष तो दूर क़ानूनी संघर्षों से भी कुछ दिलाने में अक्षम साबित होती जा रही हैं। दर्जनों कम्पनियों के समझौता पत्र पेण्डिंग हैं। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की समझौतापरस्ती, मौक़ापरस्ती व क़ानूनवाद के कारण मज़दूरों के मामले श्रम कोर्टों में लटकते-भटकते रहते हैं। निराश मज़दूर हिसाब ले लेते हैं। इसलिए जल्द ही ऑटो सेक्टर के सभी स्थायी और अस्थायी मज़दूरों को अपनी सेक्टरगत एकता के ज़रिए स्वतंत्र और क्रान्तिकारी सेक्टरगत यूनियन का निर्माण करना होगा जिसके दम पर कारख़ाना यूनियनों को भी बनाया और बचाया जा सकता है और अपने रोज़गार, हक़ और सम्मान के लिए कम्पनी प्रबन्धनों, उसकी सेवा में लगी सरकारों, श्रम विभाग और पुलिस-प्रशासन के गठजोड़ को चुनौती दी जा सकती है।

ईडब्ल्यूएस आरक्षण : मेहनतकश जनता को बाँटने की शासक वर्ग की एक और साज़िश

(पेज 1 से आगे)

हुए संविधान के संशोधन को न्यायसंगत कहा है और अनुच्छेद 15(6) और 16(6) को मान्य ठहराया है।

ईडब्ल्यूएस आरक्षण को चुनौती देते हुए 41 याचिकाओं की सुनवाई करते हुए पाँच जजों की बेंच ने खण्डित मत से लेकिन ईडब्ल्यूएस आरक्षण के समर्थन में फ़ैसला दिया है। जस्टिस बेला त्रिवेदी न केवल सबसे मुखर तौर पर ईडब्ल्यूएस आरक्षण का समर्थन कर रही थीं बल्कि भाजपा और आरएसएस की तरह दलित व पिछड़ी जातियों और जनजातियों के आरक्षण को समाप्त करने की बात दुहरा रही थीं। अपने बयान में जस्टिस बेला त्रिवेदी ने कहा कि आरक्षण एक निश्चित समय अवधि के लिए लागू किया गया था, हमेशा के लिए नहीं। देश में जातिगत समानता लाने के लिए चरणबद्ध तरीक़े से दलित व पिछड़ी जातियों और जनजातियों के आरक्षण को समाप्त कर देना चाहिए। जस्टिस बेला त्रिवेदी अपने तर्क के समर्थन में कोई तथ्य नहीं देती हैं। जस्टिस बेला त्रिवेदी के अनुसार दलित व पिछड़ी जातियों को इतना अधिक विशेषाधिकार मिल चुका है कि उसकी वजह से समाज में असमानता है। इसलिए ऊँची जाति के लोगों को आर्थिक आधार पर दिया जाने वाला 10 प्रतिशत आरक्षण जायज़ है। दूसरी बात कि दलित व पिछड़ी जातियों को मिले आरक्षण से जो असमानता पैदा हो रही है उसे रोकने के लिए चरणबद्ध रूप में आरक्षण को समाप्त किया जाना चाहिए। इस तरह की बात कोई सवर्णवादी मानसिकता वाला व्यक्ति ही कर सकता है कि दलित व पिछड़ी जातियों के आरक्षण से समाज में असमानता आ रही है।

इस तरह की ही बात दूसरे जज जे.बी. पर्दीवाला भी कह रहे थे। उनके अनुसार देश में आज़ादी के समय जो जातिगत असमानता थी आज देश में वैसी स्थिति नहीं है। आज दलित व पिछड़ी जातियों की बड़ी आबादी शिक्षा हासिल कर रही है। इसलिए अब उनकी ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जिन्हें असल में आरक्षण की आवश्यकता है। इसलिए आरक्षण पर दुबारा से सोच-विचार करने की आवश्यकता है।

ज़ाहिर है कि पिछड़ी जातियों यानी ओबीसी का मामला दलित जातियों से कुछ भिन्न है। अभी भी शिक्षा व सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों का हिस्सा अपनी आबादी के अनुपात में कम है, लेकिन उनके बीच ही कई ऐसी जातियाँ हैं जिनमें एक अच्छी-ख़ासी आबादी धनी व उच्च मध्यम किसानों में आती है और देश के खेतिहर छोटे पूँजीपति वर्ग का भी अंग हैं। उनके बीच से यदि बहुत-से लोग पढ़ भी रहे हैं, तो सरकारी नौकरियों में उनकी दिलचस्पी भूमिहीन दलित आबादी के मुक़ाबले कम है, हालाँकि पूँजीवादी खेती के संकट के साथ यह लगातार बढ़ रही है और इसी वजह से ओबीसी आरक्षण में अपनी जगह सुनिश्चित करने के लिए तमाम जातियों में जातिगत राजनीति लगातार गरमा रही है। दलित जातियों के विपरीत खेतिहर ज़मीन के मालिकाने के मामले में इन पिछड़ी जातियों की स्थिति कहीं बेहतर है। इसलिए केवल सरकारी नौकरी व शिक्षा में उनके हिस्से से कई ओबीसी जातियों की वास्तविक सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अन्दाज़ा नहीं चलता। साथ ही, कई जगहों पर आज दलित जातियों की प्रमुख उत्पीड़क जातियाँ ये ओबीसी जातियाँ ही हैं। इसलिए जाति उन्मूलन की लड़ाई में भी ऊपर की ओर गतिमान किसान मध्य जातियों और दलित जातियों के बीच गठजोड़ का सिद्धान्त एक हवा-हवाई सिद्धान्त है और ज़मीन पर यह बिरले ही कहीं व्यवहार में उतारा जा सकता है।

बहरहाल, ईडब्ल्यूएस आरक्षण के पक्ष में दिये गये इन तर्कों को सुनकर ऐसा भान होता है कि दलितों व आदिवासियों की स्थिति न केवल बेहतर हो गयी है बल्कि इतनी दुरुस्त हो गयी है कि अब सवर्ण जातियाँ वंचित की श्रेणी में आ गयी हैं इसलिए अब आरक्षण की ज़रूरत उन्हें है!

यह सच है कि आज सभी जातियाँ वर्गों में विभाजित हैं और सवर्ण जातियों का भी एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा सर्वहारा व अर्द्धसर्वहारा में तब्दील हो चुका है। यह भी सच है कि आज उसे रोज़गार की आवश्यकता है। लेकिन जब सरकारी नौकरियाँ व उच्चतर शिक्षा के अवसर हैं ही नहीं, तो फिर सवर्ण जातियों के ग़रीब तबक़े के लिए सरकारी नौकरी व उच्चतर शिक्षा में आरक्षण से उसे क्या हासिल होने वाला है? जब सरकारी शिक्षण प्रतिष्ठानों में लगातार फ़ीसें बढ़ायी जा रही हैं और सीटें घटायी जा रही हैं, तो वहाँ ईडब्ल्यूएस श्रेणी में आने वाले सवर्ण छात्र को इस आरक्षण से क्या मिलेगा? निजीकरण की जो रफ़्तार है और सरकारी उद्यमों में छँटनी और ठेकाकरण की जो दर है, उससे किसी भी आधार पर मिलने वाले आरक्षण का जो बचा-खुचा मतलब रहता था वह भी समाप्तप्राय है। ऐसे में, ईडब्ल्यूएस आरक्षण का यह जुमला वास्तव में एक ऐसी चीज़ के लिए जनता को आपस में लड़ाने की नापाक साज़िश है, जो कहीं है ही नहीं।

आरक्षण की पूरी राजनीति का ही आज मक़सद जनता को आपस में एक ग़ैर-मुद्दे पर लड़ाना है। आज़ादी के फ़ौरन बाद सरकारी नौकरियों व शिक्षा में आरक्षण एक जनवादी अधिकार के रूप में प्रासंगिकता रखता था। आज जब न तो सरकारी नौकरियों में अवसर मौजूद हैं और न ही सरकारी उच्चतर शिक्षा में, निजीकरण की आँधी ने हर चीज़ को समेट लिया है, तो ऐसे में व्यापक दलित व पिछड़ी जातियों तथा आदिवासी आबादी को यह समझ लेना चाहिए कि जातिगत व जनजातिगत आधार पर होने वाले सामाजिक उत्पीड़न को समाप्त करने और सामाजिक व आर्थिक बराबरी हासिल करने और मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता आरक्षण की राजनीति से नहीं जाता है।

साथ ही, जो सवर्णवादी व ब्राह्मणवादी "योग्यता" व "मेरिटोक्रेसी" की बकवास के आधार पर दलितों व आदिवासियों के लिए आरक्षण को समाप्त करने की बात करते हैं, वे शिक्षण संस्थानों में कभी अमीरों को सीटें बेचने, प्रबन्धन कोटा, एनआरआई कोटा का विरोध नहीं करते और न ही वे सरकारी उद्यमों के निजीकरण व सरकारी नौकरियों को समाप्त किये जाने का विरोध करते हैं। इसी से पता चल जाता है कि वे दलितों व आदिवासियों हेतु मौजूद आरक्षण का विरोध केवल और केवल सवर्णवादी और ब्राह्मणवादी मानसिकता के चलते करते हैं। इसलिए जहाँ कहीं सरकारें आरक्षण के तहत सीटों पर भर्ती नहीं करतीं या दाख़िला नहीं देतीं, वहाँ क्रान्तिकारी शक्तियों को एक जनवादी अधिकार के रूप में आरक्षित सीटों पर भर्ती व दाख़िले पर मौजूद भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ना चाहिए, बिना यह मुग़ालता पाले कि आरक्षण के रास्ते सामाजिक असमानता समाप्त हो सकती है या दलित व आदिवासी मुक्त हो सकते हैं। अगर ऐसा होना होता तो आरक्षण के इतने दशकों के बाद हो चुका होता। लेकिन आज भी दलितों की 90 फ़ीसदी आबादी या तो शहरी सर्वहारा व अर्द्धसर्वहारा है या ग्रामीण सर्वहारा व अर्द्धसर्वहारा। और इस प्रतिशत में पिछले कुछ दशकों से अब ज़्यादा अन्तर नहीं आ रहा है।

आज क्यों उछाला गया है ईडब्ल्यूएस आरक्षण का मसला और इससे सवर्ण जातियों के मेहनतकशों को क्या हासिल होगा?

भाजपा ने आज ईडब्ल्यूएस आरक्षण का मसला क्यों उछाला है? उसका असली मक़सद है सवर्ण जातियों में मौजूद मध्य व उच्च मध्यवर्ग का ध्रुवीकरण अपने पक्ष में करना। साथ ही, जनता के बीच ब्राह्मणवादी व जातिगत विचारधारा व पूर्वाग्रह के असर को बढ़ाना और उसका इस्तेमाल करके जनता को खण्ड-खण्ड में तोड़ना भी इस क़दम का मक़सद है। यह सब इस समय वास्तव में जारी विधानसभा चुनावों और 2024 में आने वाले लोकसभा चुनावों के मद्देनज़र किया गया है। बढ़ती महँगाई और बेरोज़गारी पर क़ाबू पाने में नाकाम भाजपा सरकार के पास मन्दिर, लव जिहाद आदि के अलावा कोई मसला नहीं बचा है। उसके एजेण्डा में अब रोज़गार और महँगाई का नाम लेना भी शामिल नहीं रह गया है। ऐसे में, भाजपा सरकार को ऐसे मुद्दे की ज़रूरत थी जो वोटों का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने के साथ सवर्ण जातियों के मध्यवर्गीय वोटों को उसके पक्ष में करे।

ईडब्ल्यूएस आरक्षण के नये नियम के अनुसार जिन परिवारों को किसी अन्य समुदायगत आरक्षण के तहत आरक्षण नहीं मिला है और जिनकी वार्षिक आय रु. 8 लाख तक है, वे इस आरक्षण के अधिकारी हैं! आर्थिक रूप से ग़रीब सवर्ण जाति के लोगों के लिए आरक्षण प्राप्त करने के लिए मुख्य तौर पर पाँच अर्हताएँ होनी चाहिए। पहली, परिवार की सालाना आय 8 लाख रुपये से कम हो, दूसरी है कृषि योग्य भूमि 5 एकड़ से कम हो, तीसरी है रिहायशी मकान 1,000 वर्ग फुट से कम हो, चौथी है नगरपालिका में प्लॉट 100 गज से कम हो तथा पाँचवी है रिहायशी प्लॉट नगरपालिका से बाहर हो तो यह 200 गज से कम हो। अब आप ही सोचिए, यदि कोई प्रतिमाह लगभग रु. 67,000 कमाता है, तो वह आर्थिक रूप से कमज़ोर तबक़े की श्रेणी में किस प्रकार आया? जिस देश में शीर्ष की 10 प्रतिशत आबादी में आने के लिए केवल रु. 25,000 प्रतिमाह कमाना होता है और जिस देश में 82 प्रतिशत पुरुष कामगार और 92 प्रतिशत स्त्री कामगार रु. 10,000 प्रतिमाह से कम कमाते हैं, वहाँ पर रु. 67,000 प्रतिमाह कमाने वाला आर्थिक रूप से कमज़ोर तबक़े में किस प्रकार आया? जाहिर है कि इसका मक़सद भी सवर्ण जातियों के आम मेहनतकश लोगों को फ़ायदा पहुँचाना नहीं है, बल्कि उनमें मौजूद खाते-पीते मध्यवर्गीय परिवारों को लाभ की आशा देना है और उनका वोट बटोरना है। जो अर्हता निर्धारित की गयी है उसमें तो सवर्ण आबादी का क़रीब 80 प्रतिशत आ जायेगा, जिसमें कि आम मेहनतकश आबादी के साथ मध्यवर्गीय आबादी भी शामिल है। ज़ाहिर है, इस ईडब्ल्यूएस आरक्षण का लाभ सवर्ण मेहनतकश आबादी को नहीं मिलने वाला है, हालाँकि उससे भ्रमित वह भी होगी। यह है भाजपा की असली साज़िश जिसके तहत ईडब्ल्यूएस आरक्षण का नया झुनझुना लोगों के हाथों में थमाया जा रहा है।

लेकिन सवर्ण मध्यवर्ग को भी यह क्या वास्तव में शिक्षा या रोज़गार देने के मामले में कोई करामात कर सकता है? जी नहीं! क्योंकि सरकारी नौकरियाँ पैदा ही नहीं हो रही हैं और जो हैं उन्हें या तो समाप्त किया जा रहा है या फिर उनका ठेकाकरण करके उन पर स्थायी भर्तियाँ बन्द की जा रही हैं। यह एक हवाई केक है जिसका एक हिस्सा पाने के लिए हर कोई बेताब है और बेकारी का आलम यह है कि इस हवाई केक की छवि के पीछे भी आम जनता को लड़वाया जा सकता है।

भारत में रोज़गार और शिक्षा की स्थिति

हमारे देश में पूरी आबादी का लगभग 47 प्रतिशत हिस्सा शिक्षा और रोज़गार के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहा है। 15 से 24 वर्ष की युवा आबादी जिसे हम शिक्षा प्राप्त करने वाली आबादी तथा एक हद तक रोज़गार की क़तार में भी शामिल आबादी की तरह देखते हैं उसकी संख्या 250,203,116 यानी लगभग 25 करोड़ है। यह आबादी का 17 प्रतिशत हिस्सा है। 25 से लेकर 44 वर्ष की युवा आबादी 434,629,949 (लगभग 43.4 करोड़) है। यह पूरी आबादी का लगभग 30 प्रतिशत है। इस आबादी को हम रोज़गार की प्रतिस्पर्धा में प्रमुख तौर पर शामिल कर सकते हैं, हालाँकि श्रम बाज़ार में शामिल होने की मज़दूरों की औसत उम्र 15 से ही आरम्भ हो जाती है। वैसे तो मज़दूर व मेहनतकश वर्ग बचपन से लेकर जीवित रहते तक दो जून की रोटी के लिए रोज़गार की क़तार में शामिल रहता है लेकिन अगर हम प्रमुख तौर पर 15 से 44 वर्ष को काम की तलाश वाली आबादी रखें तो यह आबादी का 47 प्रतिशत होगी जो एक बड़ी संख्या है।

यदि हम 68 करोड़ आबादी की तुलना मौजूदा सरकारी नौकरियों से करें तो नौकरियों की स्थिति नगण्य प्राय नज़र आयेगी। निजी क्षेत्रों में भी नौकरियों की स्थिति बेहद बुरी है। इसकी पुष्टि बेरोज़गारी की बढ़ती दर कर रही है जो सरकारी आँकड़ों के अनुसार भी फ़िलहाल 8 प्रतिशत जा पहुँची है, जिनका मक़सद ही बेरोज़गारी की वास्तविक स्थिति को छिपाना होता है।

सरकारी नौकरियों की सूची देखें तो सबसे बड़ी भर्ती करने वाला रेल विभाग है। यह ग्रुप-डी में सबसे अधिक भर्तियाँ करता है। ग्रुप-डी में लगभग 1 लाख 35 हज़ार नौकरियाँ हैं। इसमें यदि बाक़ी दूसरी श्रेणियों की नौकरियाँ जोड़ दें तो यह संख्या 1 लाख 48 हज़ार होती है। दूसरी सबसे बड़ी भर्ती करने वाले में है सेना और पुलिस। पुलिस में वर्ष 2022 के लिए 25,011 नौकरियाँ हैं जिसमें सभी राज्यों की भर्तियाँ शामिल हैं। सेना में सबसे बड़ी संख्या 10 हज़ार अग्निवीर नौकरियों की दिखा रहे हैं। समझ ही सकते हैं कि ठेका जैसी 4 साल की नौकरी को भी सरकारी नौकरी में शामिल किया जा रहा है। कुल सेना की भर्ती अग्निवीर

(पेज 8 पर जारी)

ईडब्ल्यूएस आरक्षण : मेहनतकश जनता को बाँटने की शासक वर्ग की एक और साज़िश

(पेज 7 से आगे)

को शामिल करते हुए 12 हज़ार से ऊपर नहीं जायेगी।

अलग-अलग सरकारी बैंकों की प्रकाशित नौकरियों को देखें तो वर्ष 2022 के लिए इनकी संख्या 2,356 है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की सभी प्रकाशित नौकरियों की संख्या 6,317 है। अगर सभी नौकरियों को जोड़ भी दें और अग्निवीर जैसी ठेका चरित्र वाली नौकरियों को भी जोड़ दें तो यह संख्या 2 लाख भी नहीं पहुँच पायेगी। इसके अलावा सभी राज्यों में औसतन तीन से चार हज़ार नौकरियाँ हैं। कई राज्यों जैसे हरियाणा और पँजाब में नौकरी की स्थिति बेहद बुरी है। वहीं राज्य सरकारों ने तय नौकरियों से 21 प्रतिशत कम नौकरियाँ दी हैं।

वर्ष 2021 में केन्द्र सरकार ने कुल 38 हज़ार नौकरियाँ ही प्रकाशित की थीं जो पहले से प्रकाशित नौकरियों से 27 प्रतिशत कम है। यहाँ पर ही हम लोक सेवा आयोग और राज्य सेवा आयोग की स्थिति को भी दर्शाना चाहेंगे। लोक सेवा आयोग ने वर्ष 2014 में 1364 नौकरियाँ प्रकाशित कीं जो 2015 में कम होकर 1164 रह गयीं, 2017 में 1058 और 2018 में मात्र 812 सीटें ही रह गयीं। वर्ष 2014 से अब तक सीटों में 47 प्रतिशत गिरावट आयी है। इसी प्रकार एसएससी नौकरियों में घटती संख्या देख सकते हैं। 2013 में 20,000 नौकरियाँ, 2018 में यह घट कर 12,000 रह गयीं और अब तो मात्र 8000-9000 ही रह गयी हैं। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर महीने 13 लाख नौकरियों की आवश्यकता है और पूरे साल में कम से कम 80 लाख। बेरोज़गारी की दर 8 प्रतिशत पहुँच गयी है। वर्ष 2022 में बेरोज़गारी दर सबसे ऊँची है जो कोरोना काल की दर को छूने जा रही है। आने वाले दिनों में स्थिति में सुधार के आसार नज़र नहीं आ रहे हैं। उल्टा विश्व के बड़े बुर्जुआ अर्थशास्त्री आने वाली भयंकर मन्दी की ओर इशारा कर रहे हैं।

ज़ाहिर है, नौकरी की तलाश करने वाली संख्या की तुलना में यदि सरकारी नौकरियों की संख्या की बात करें तो वह ऊँट के मुँह में ज़ीरे के समान भी नहीं है।

न्यायपालिका के सवर्णवादी पूर्वाग्रह और आरक्षण की सच्चाई

जजों का दावा है कि जातिगत आधार पर दिया जाने वाला आरक्षण समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए बेमानी होता जा रहा है। उल्टा जातिगत आरक्षण की वजह से समाज में असमानता पैदा हो रही है। उस असमानता को पाटने के लिए आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया जाना चाहिए।

अब ज़रा इनके दावों का तथ्यों से मेल करते हैं और देखते हैं कि आरक्षण से समाज में कितना परिवर्तन आया है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) के वर्ष 2018 के नियमित लेबर फ़ोर्स सर्वे के अनुसार अनुसूचित जातियों में स्नातकों की संख्या (18 प्रतिशत) उच्च जातियों के स्नातकों (37 प्रतिशत) की तुलना में आधे से भी कम है। इसी प्रकार अनुसूचित जाति के कैज़ुअल मज़दूरों का 33 प्रतिशत है जबकि (पूरी आबादी में उनका हिस्सा मात्र 16 प्रतिशत है) उच्च जाति से कैज़ुअल मज़दूरों में 15 प्रतिशत हैं। 1999 से यह अनुपात लगभग वैसा ही बना हुआ है। अनुसूचित जातियों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराध बताते हैं आज भी जातिगत उत्पीड़न किस प्रकार समाज में मौजूद है। 2019 में 45,961 अपराधों, 2020 में 50,291 और 2021 में 50,900 अपराधों के शिकार अनुसूचित जातियों के लोग हुए।

सरकारी दफ़्तरों (कैबिनेट सेक्रेटेरियेट, लोक सेवा आयोग और चुनाव आयोग) में कार्यरत ग्रुप-ए से ग्रुप-सी में कुल 5.12 लाख कर्मचारियों का जातिगत अनुपात राज्यसभा में 17 मार्च 2022 को प्रस्तुत किया गया। इनमें सफ़ाई कर्मचारी भी शामिल हैं। इसमें रेल और डाक विभाग को शामिल नहीं किया गया है। इन 5.12 लाख कर्मचारियों में ग्रुप-ए से ग्रुप-सी तक के कर्मचारियों में 17.70 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 6.72 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति और 20.26 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों से हैं।

	अनुमोदित पद	भरे गये पद	ख़ाली पद	ख़ाली पदों का प्रतिशत
ग्रुप ए (गैज़ेटेड)	1,33,383	1,09,799	23,584	18%
ग्रुप बी (गैज़ेटेड)	1,16,527	90,245	26,282	23%
ग्रुप सी (नॉन-गैज़ेटेड)	2,87,006	1,94,481	92,525	32%
ग्रुप डी (नॉन-गैज़ेटेड)	34,98,287	26,61,351	8,36,936	24%
ग्रुप ए (गैज़ेटेड)	40,35,203	30,55,876	9,79,327	24%

स्रोत: प्रश्न सं. 463 लोकसभा

*ऊपर दी गयी तालिका में कुल मौजूद पदों की संख्या दी गयी है। जिसमें रिक्त पदों को दिखाया गया है। अभी सरकार को इन पदों को भरना है लेकिन सरकार नयी भर्तियाँ नहीं कर रही है। हर साल नौकरियाँ पहले से कम करती जा रही है। कामों को ठेके पर कराया जा रहा है।

	केन्द्र सरकार की नौकरियों के आवेदक (करोड़ में)	नियुक्तियाँ (लाख में)
2014 -15	2.32	1.30
2015-16	2.96	1.11
2016-17	2.29	1.01
2017-18	3.95	0.76
2018-19	5.09	0.38
2019-20	1.78	1.47
2020-21	1.8	0.78
2021-22	1.87	0.38
कुल	22.06	7.22

स्रोत: प्रश्न सं. 1803 लोकसभा; अंकों को पूर्ण संख्या में दिया गया है

ग्रुप-ए के उच्च पदों की बात यदि करें तो वहाँ अनुसूचित जाति से 12.86 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति से 5.64 प्रतिशत और अन्य पिछड़ी जातियों से 16.88 प्रतिशत हैं। ये आँकड़े सरकारी हैं।

इन्हें देखकर हम समझ सकते हैं कि जातिगत असमानता को नकारकर आरक्षण का विरोध करने वाले तथ्यों के आधार पर नहीं बल्कि अपने पूर्वाग्रहों और सवर्णवादी मानसिकता से प्रस्थान कर रहे हैं। यह सच है कि आरक्षण जातिगत असमानता, शोषण, उत्पीड़न और पार्थक्य को तोड़ने में पूरी तरह असफल रहा है और यह किसी भी रूप में जातिगत सामाजिक असमानता को समाप्त नहीं कर सकता है और किसी भी तरह से यह दलित मुक्ति का रास्ता नहीं हो सकता। यह भी सच है कि आज जब सरकारी नौकरियों और उच्चतर शिक्षा के अवसर ही समाप्त होते जा रहे हैं, तो आरक्षण का प्रश्न ही एक ग़ैर-मुद्दा बन गया है। लेकिन यह कहना कि आरक्षण से अब सामाजिक समानता की वह मंज़िल आ गयी है कि अब जातिगत आधार पर मौजूद आरक्षण को समाप्त कर दिया जाये, तथ्यों के साथ बलात्कार है और ऐसा दावा करने वाले के मन के सवर्णवादी कीड़े को ही दिखलाता है।

17 मार्च 2022 को राज्य सभा में प्रस्तुत आँकड़ों में एक आँकड़ा आरक्षण के रिक्त पदों का भी था। यह आँकड़े दस केन्द्रीय विभागों के हैं जिसमें रक्षा सम्बन्धी उत्पादन विभाग, रेल, वित्त सेवाएँ, डाक, रक्षा विभाग, आवास एवं शहरी मामले, गृह विभाग, अणु ऊर्जा, कर विभाग और शिक्षा शामिल है। आँकड़े दर्शा रहे हैं कि आरक्षित पद भारी संख्या में रिक्त हैं। यानी आरक्षित पदों पर नौकरी की घोषणा तो हुई लेकिन उम्मीदवार नहीं मिले जिसकी वजह से पद रिक्त रह गया। इन दसों विभाग में अनुसूचित जातियों के लिए भरे पद 13,202; और रिक्त पद 17,880. अनुसूचित जनजातियों के भरे पद 9,619 और रिक्त पद 14,061 हैं, वहीं अन्य पिछड़ी जातियों के 11,732 भरे पद और 19,283 रिक्त पद। मतलब आरक्षित पदों के लिए कुल 51,224 सीटें थीं जिसमें मात्र 34,553 सीटें ही भरीं बाक़ी रिक्त रह गयीं क्योंकि उम्मीदवार नहीं थे! केन्द्र सरकार की नौकरियों का कुल 90 प्रतिशत इन 10 विभागों से आता है। सामाजिक समानता स्थापित करने के रास्ते के तौर पर आरक्षण को बनाये रखने या इसे बढ़ाने आदि की बात करने वाले आरक्षण के इस पहलू पर चुप क्यों रहते हैं? ऐसा क्यों है कि सात दशक से अधिक आरक्षण लागू होने के बाद भी पद के लिए उम्मीदवार नहीं मिलते? भ्रष्टाचार एक पहलू हो सकता है। लेकिन सिर्फ़ भ्रष्टाचार कहकर इस बात पर पर्दा नहीं डाला जा सकता।

उच्च शिक्षा में कुल नामांकन अनुपात मात्र 27 प्रतिशत है। यानी उच्च शिक्षा हासिल कर सकने वाली कुल आबादी से 3.74 करोड़ नौजवान ही उच्च शिक्षा में दाख़िला ले पाते हैं। ऊपर हमने 15 से 24 वर्ष की आयु की गणना दी है। किशोरवय का 50 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा भी नहीं हासिल कर पाता। बचा हुआ 50 प्रतिशत किशोरवय हिस्सा जो लगभग 15 करोड़ के आसपास होगा उसमें से मात्र 3.74 करोड़ छात्रों का उच्च शिक्षा में होना शिक्षा की बदहाली को ही दर्शाता है। गाँव और छोटे शहरों में स्कूलों की जो स्थिति है उससे हम सभी वाक़िफ़ हैं। हम जानते हैं कि भारत के बच्चों-नौजवानों की एक बड़ी आबादी शिक्षा से या अच्छी शिक्षा से वंचित है। ऐसे में उच्च शिक्षा में मिलने वाला आरक्षण इन बच्चों व नौजवानों के काम कैसे आ सकता है?

पहचान की राजनीति करने वाले जो गला फाड़-फाड़कर आरक्षण की माँग करते हैं उनसे यह पूछना होगा कि आरक्षण लागू होने के सत्तर वर्षों बाद भी अनुसूचित जाति और जनजाति की जीवन परिस्थितियों में कोई गुणात्मक परिवर्तन क्यों नहीं आया है? यदि आरक्षण ने उनकी जीवन परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं किया है तब भी जाति समस्या का समाधान मात्र आरक्षण कैसे हो सकता है? क्या इस बात की पड़ताल नहीं की जानी चाहिए कि 8-10 प्रतिशत दलित आबादी को छोड़ दें तो बाक़ी 92 प्रतिशत दलित आबादी के लिए आरक्षण बेमानी है। यदि आरक्षण के रास्ते सामाजिक समानता आनी होती तो 70 वर्षों बाद भी यह हालत नहीं होती। आरक्षण से जो हुआ है वह यह है कि दलित आबादी में से 8-10 प्रतिशत हिस्सा ऐसा पैदा हुआ है जो उच्च या उच्च-मध्य वर्ग में तब्दील हो चुका है, राजनीतिक व आर्थिक शक्ति का हिस्सेदार बन चुका है और किसी सवर्ण शासक वर्ग से भी ज़्यादा वफ़ादारी से मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की हिफ़ाज़त के लिए प्रतिबद्ध है, जो कि दलित मेहनतकश आबादी की शोषक और उत्पीड़क ही है। उसका दर्द सिर्फ़ इतना है कि शासक वर्ग का सवर्ण हिस्सा अपनी ब्राह्मणवादी मानसिकता के चलते उसे आर्थिक व राजनीतिक रूप से शक्तिशाली होने के बावजूद वह सम्मान नहीं देता, जिसका वह अपने आपको अधिकारी महसूस करता है। लेकिन इस ब्राह्मणवादी विचारधारा के ख़िलाफ़ भी दलितों के बीच पैदा हुआ यह तबक़ा सड़कों पर उतरकर रैडिकल लड़ाई लड़ने को तैयार नहीं है। दलित उत्पीड़न की तमाम घटनाओं पर वह चुप रहता है या फिर ज़ुबानी जमाख़र्च करने से आगे नहीं जाता।

दलित आबादी आज भी गाँवों में भयंकर जातिगत उत्पीड़न झेल रही है। बथानी टोला, खैरलांजी, मिर्चपुर (हरियाणा), भीमा कोरेगाँव में होने वाले नरसंहार, रोहित वेमुला और पायल तडवी की आत्महत्या, हाथरस गैंग रेप, इन्द्र मेघवाल की हत्या देश में दलित आबादी के साथ होने वाले भयंकर जातिगत उत्पीड़न के ही प्रमाण हैं। जेलों में सबसे अधिक संख्या में दलितों और मुसलमानों का होना यही दर्शाता है कि आज भी जातिगत उत्पीड़न भारतीय समाज की सच्चाई है।

निष्कर्ष के तौर पर

देश में रोज़गार और शिक्षा की स्थिति पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। घटती नौकरियों और शिक्षा में बढ़ते निजीकरण को देखते हुए आरक्षण आज किसी भी रूप में पिछड़ी जातियों या जनजातियों की मुक्ति का रास्ता नहीं लगता। इसके लागू होने के सात दशकों से अधिक के बाद भी 92 प्रतिशत दलित आबादी की जीवन परिस्थितियों में कोई बुनियादी सुधार नहीं आया है। आरक्षण का लक्ष्य राहत या सुधार नहीं, बल्कि पूँजीवादी

(पेज 10 पर जारी)

आम मेहनतकश जनता का ख़तरनाक और धोखेबाज़ दुश्मन है अरविन्द केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी'

(पेज 1 से आगे)

करने के लिए केजरीवाल-सिसोदिया ने पहले आर.एस.एस. द्वारा खड़े किये गये अण्णा हज़ारे के आन्दोलन की लहर पर सवारी की और जब उसका पूरा लाभ निचोड़ लिया तो 2014 के दिल्ली विधानसभा चुनावों के पहले 'आम आदमी पार्टी' का गठन किया। शुरू से ही इस पार्टी ने हर सवाल को ही भ्रष्टाचार पर लाकर ख़त्म कर दिया : यानी बेरोज़गारी, ग़रीबी, शोषण, अन्याय आदि सबकी जड़ में भ्रष्टाचार है, और भ्रष्टाचार का रिश्ता लोगों के ईमानदार या बेईमान होने से है! मानो इन्सान पैदाइशी तौर पर बेईमान या ईमानदार होता हो! यह सारी सोच इसलिए बनायी जा रही थी ताकि इस बात को छिपाया जा सके कि समूची पूँजीवादी व्यवस्था ही मज़दूर वर्ग के नज़रिए से एक भ्रष्टाचार ही है, जो मज़दूर वर्ग के शोषण पर टिकी है, जो मज़दूर वर्ग के श्रम से अतिरिक्त मूल्य निचोड़ने पर टिकी हुई है। सारी बात को ही 'ईमानदार नेताओं' और 'भ्रष्टाचारी नेताओं' पर लाकर समेट दिया गया। ज़ाहिरा तौर पर, केजरीवाल और उसकी पार्टी 'आप' ने दावा किया कि वे ही ईमानदार हैं और बाक़ी सभी बेईमान हैं। यह दीगर बात है कि आने वाले वर्षों में केजरीवाल की पार्टी में भाजपा और कांग्रेस जैसी पार्टियों से ही तमाम नेता भर्ती हो गये और वे एक मिनट में ईमानदार भी हो गये।

यह 'भ्रष्टाचार-भ्रष्टाचार' का शोर सबसे ज़्यादा पूँजीपति वर्ग को पसन्द आता है क्योंकि उसे भी तो भ्रष्टाचार पसन्द नहीं है! उसे यह पसन्द नहीं कि अगर वह श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करते हुए न्यूनतम मज़दूरी, आठ घण्टे का कार्यदिवस, डबल रेट से ओवरटाइम का भुगतान, मुआवज़ा क़ानून, साप्ताहिक अवकाश लागू नहीं करता तो फिर लेबर इंस्पेक्टर या फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर उससे आकर घूस माँगे! उसे पसन्द नहीं कि जब उसे मज़दूरों के श्रम के शोषण के लिए नयी कम्पनी खोलनी होती है तो उसे बीस जगह से क्लियरेंस और नो ऑब्जेक्शन प्रमाणपत्र लेना पड़ता है, जिसके लिए उसे सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों को घूस देनी पड़ती है! उसे पसन्द नहीं कि सेल्स टैक्स डिपार्टमेण्ट वाले उससे वसूली करते हैं और उसे टैक्स चोरी का अधिकार देने की पूरी क़ीमत वसूलते हैं! कितना भ्रष्टाचार है, यह सोचकर पूँजीपतियों की आँखें भर आती हैं, गला रुँध जाता है! वह चाहता है कि सरकारी भ्रष्टाचार ख़त्म हो और उसे अपना मुनाफ़ा नौकरशाह बुर्जुआ वर्ग के साथ साझा न करना पड़े।

दूसरी तरफ़, नौकरशाह पूँजीपति वर्ग कहता है कि सूखी पगार में गुज़ारा नहीं चलता! जब तमाम पूँजीपति मज़दूरों को लूटकर नोट छाप रहे हैं, और उनकी समूची व्यवस्था को चलाने का काम नौकरशाह, अधिकारी और सरकार के उच्च कर्मचारी कर रहे हैं, तो उन्हें पगार के ऊपर उद्यमी पूँजीपति के मुनाफ़े से कुछ हिस्सा भी तो मिलना चाहिए! यह पूँजीपति वर्ग के दो हिस्सों के बीच मज़दूरों से लूटे गये बेशी मूल्य के बँटवारे का सवाल होता है। पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर भ्रष्टाचार-विरोधी राजनीति का आधार यही अन्तरविरोध होता है। अरविन्द केजरीवाल और उसकी 'आप' ने इसी अन्तरविरोध को भुनाया। लेकिन उसके समर्थन में मध्यवर्गीय व निम्न मध्यवर्गीय टुटपुँजिया आबादी भी जुट गयी। आप पूछेंगे क्यों? इसलिए क्योंकि मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग अलग प्रकार के सरकारी भ्रष्टाचार का शिकार होता है। उसे बिजली का बिल ठीक करवाने के लिए लाइन में लगना पड़ता है और घूस देनी पड़ती है, तो वह समूची व्यवस्था को गरियाता है और बोलता है : 'इस देश को हिटलर की ज़रूरत है, जो सबको टाइट कर दे!' इसलिए जब अण्णा हज़ारे जन्तर-मन्तर पर अपनी नौटंकी के लिए इकट्ठा हुआ और बाद में जब केजरीवाल और 'आप' का भारतीय राजनीति के पटल पर अवतरण हुआ, तो वह भी उनके पीछे चल पड़ा।

ऊपर से शुरू से ही केजरीवाल और 'आप' की राजनीति दक्षिणपन्थी लोकरंजकतावाद कर रही थी। यानी वह एक ओर अन्धराष्ट्रवाद के मामले में भाजपा से होड़ कर रही थी, तो दूसरी ओर वह टुटपुँजिया आबादी को लुभाने वाले मुद्दों को लपक रही थी। अन्धराष्ट्रवाद, हिन्दू पुनरुत्थानवाद और टुटपुँजिया लोकरंजकतावाद के तत्वों से बनी अरविन्द केजरीवाल की राजनीति सदाचार की तुरही बजाते हुए 2014 में दिल्ली में सत्ता में आयी। तब से आठ साल बीत चुके हैं। इस बीच अरविन्द केजरीवाल और उसकी पार्टी ने अपने आपको दिल्ली के दलालों, व्यापारियों, कारख़ानेदारों, ठेकेदारों, जॉबरों व प्रॉपर्टी डीलरों की पार्टी के रूप में स्थापित कर लिया है। इस मामले में कम-से-कम दिल्ली में उसने भाजपा की जगह ले ली है।

इसके साथ, केजरीवाल सरकार ने कुछ ऐसे फ्रॉड किये हैं, जिनकी सच्चाई दिल्ली की टुटपुँजिया आबादी और व्यापक मेहनतकश जनता अभी तक समझ नहीं सकी है। मिसाल के तौर पर, 200 यूनिट तक फ्री बिजली का मसला लीजिए। निश्चित तौर पर सभी को 200 यूनिट तक ही नहीं बल्कि निःशुल्क बिजली देने की व्यवस्था करना तो सरकार की ज़िम्मेदारी ही होनी चाहिए। इसके लिए विद्युत उत्पादन और वितरण को पूर्णत: सरकार के हाथ में होना चाहिए। बिजली निःशुल्क इसलिए होनी चाहिए क्योंकि जनता इस प्रकार की बुनियादी सुविधाओं के लिए पहले ही अप्रत्यक्ष करों के रूप में भुगतान कर चुकी है। साथ ही, व्यापक मेहनतकश जनता को ये सभी बुनियादी सुविधाएँ देने के लिए सरकार को देश के अमीरज़ादों पर विशेष टैक्स लगाने चाहिए क्योंकि इन अमीरज़ादों की समृद्धि का स्रोत भी व्यापक मेहनतकश जनता का श्रम ही है। लेकिन क्या केजरीवाल सरकार ने ऐसा कुछ किया? नहीं। उसने न तो कांग्रेस सरकार द्वारा दिल्ली में बिजली वितरण के निजीकरण को वापस लिया और न ही दिल्ली के पूँजीपतियों से करों की नियमित वसूली का काम किया। उल्टे उसने दिल्ली की जनता पर करों का बोझ बढ़ाया और उन करों में से ही बिजली वितरण करने वाली निजी कम्पनियों को भुगतान करने के लिए सब्सिडी दी! यानी, बिजली की क़ीमत वास्तव में अभी भी उतनी ही है। दिल्ली सरकार अभी भी पुरानी ऊँची दरों पर ही बिजली टाटा और अम्बानी से (यानी एनडीपीएल और बीएसईएस) से ख़रीद रही है, लेकिन जनता को 200 यूनिट तक बिजली फ्री देने के लिए जो सब्सिडी दी जा रही है, उसी से वह टाटा और अम्बानी को भुगतान कर रही है। लेकिन दिल्ली सरकार यह सब्सिडी दिल्ली की जनता की जेब से ही लेकर दे रही है क्योंकि उसकी आय दिल्ली की जनता से वसूले गये करों से होती है। फ़र्क़ बस इतना है कि दिल्ली के आम ग़रीब नागरिक को अपने बिजली बिल पर 200 यूनिट तक बिजली ख़र्च करने पर छूट मिलती दिखती है तो उसे लगता है कि उसका ख़र्च कम हो गया। लेकिन टैक्स को बढ़ाकर जो सब्सिडी दी जा रही है, वह सीधे तौर पर किसी बिल पर लिखकर जनता के पास नहीं आती। वह उसे बढ़ी हुई महँगाई के रूप में दिखती है, जिसके लिए केजरीवाल सीधे तौर पर ज़िम्मेदार नज़र नहीं आता। इस प्रकार दिल्ली की जनता को कोई फ्री बिजली या पानी नहीं मिल रहा है। उसकी क़ीमत केजरीवाल सरकार जनता से ही वसूल रही है, लेकिन अप्रत्यक्ष तौर पर जबकि प्रत्यक्ष तौर पर जनता को यह भ्रम होता है कि उसे कोई छूट मिली है। इस बात को जनता को समझने और समझाने की ज़रूरत है।

इसी प्रकार दिल्ली के स्कूलों की गुणवत्ता के बारे में भी केजरीवाल का प्रचार झूठा है। जो दिल्ली के राजकीय विद्यालयों में एक बार घूम लेगा उसे इस झूठे प्रचार की सच्चाई समझ में आ जायेगी। बेहतर आर्थिक हैसियत वाले लोगों के इलाक़ों में चन्देक सरकारी स्कूलों को मॉडल स्कूल के रूप में केजरीवाल सरकार ने स्थापित किया है और उसी की तस्वीरें दिखाकर वह दावा कर रही है कि उसने दिल्ली की स्कूल व्यवस्था बदल डाली है! इसके अलावा, केजरीवाल ने पूँजीवादी राष्ट्रवाद का पाठ स्कूलों में पढ़ाने के लिए बाक़ायदा कोर्स शुरू करवाया है। यह पूरा कोर्स व्यापक मेहनतकश जनता के विरोध में खड़ा है और किसी अमूर्त 'राष्ट्र' की सेवा में अपना शोषण और दोहन करवाने की शिक्षा आम ग़रीब आबादी के बच्चों को देता है। वास्तव में इसका अर्थ है पूँजीपतियों के राष्ट्र के लिए मेहनतकशों को अपनी हड्डियाँ गलाने की शिक्षा देना। साथ ही, केजरीवाल सरकार सभी बच्चों को छोटे-मोटे धन्धे करने का प्रशिक्षण दे रही है, ताकि "हर कोई नौकरी दे, कोई नौकरी न करे"! लेकिन हर कोई छोटा-मोटा उद्यमी पूँजीपति बन जायेगा तो वह नौकरी देगा किसको? इस तरह की बातों से जनता को मूर्ख बनाने के काम में केजरीवाल और उसकी 'आप' पार्टी मोदी और उसकी भाजपा से प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं। यह बातें सुनकर टुटपुँजिया वर्ग के लोग अक्सर मूर्ख बन भी जाते हैं। सर्वहारा वर्ग को उन्हें इस तरह की बातों की चार सौ बीसी के बारे में समझाना चाहिए और बताना चाहिए कि 'सभी उद्यमी बन जायें' का नारा रोज़गार पैदा करने के मामले में व्यवस्था की पूर्ण असफलता को छिपाने के लिए दिया गया जुमला है।

मुहल्ला क्लिनिक के बारे में मचाये गये शोर के पीछे भी केजरीवाल सरकार की धोखाधड़ी ही है। मुहल्ला क्लिनिक के लिए दिल्ली में नये डॉक्टरों व नर्सों आदि की कोई भर्ती नहीं की गयी बल्कि दिल्ली के राजकीय अस्पतालों में पहले से ही काम के बोझ तले दबे स्टाफ़ से ही काम करवाकर इन मुहल्ला क्लिनिकों को चलवाने की कोशिश की गयी। नतीजा वही हुआ जो होना था। आज अधिकांश मुहल्ला क्लिनिक या तो बन्द पड़े हैं, या कभी-कभार खुलते हैं और जब खुलते भी हैं तो उनमें अक्सर डॉक्टर, नर्स व तमाम सुविधाएँ मौजूद नहीं होती हैं।

लेकिन इन सारे फ्रॉडों का प्रचार करने के लिए आम आदमी पार्टी की सरकार ने अपना ख़र्च पिछले कुछ महीनों में ही हज़ार प्रतिशत से ज़्यादा बढ़ाया है! करोड़ों-करोड़ रुपये केजरीवाल सरकार अपने झूठे प्रचार पर बहा रही है। अधिकांश मामलों में केजरीवाल बौना मोदी साबित हो रहा है। उसकी सारी हरकतें वैसी ही हैं। बस वह छोटी इकाई का मोदी है। वह छोटे पूँजीपतियों व मँझोले पूँजीपतियों का चहेता है दिल्ली में! क्यों? उसने दिल्ली के छोटे व मँझोले (और बड़े भी!) पूँजीपतियों को तमाम प्रकार के करों, लेबर इंस्पेक्टरों-फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों, सेल्स टैक्स विभाग आदि के छापों से पूर्ण रूप से छुटकारा देते हुए उन्हें भ्रष्टाचार करने और मुनाफ़ा पीटने की पूरी आज़ादी दे दी है। केजरीवाल ने सत्ता में आते ही कहा था, "अजी, मैं तो बनिया हूँ, धन्धा मेरे ख़ून में है!" कम से कम छोटे व मँझोले पूँजीपति वर्ग से उसने अपना वायदा दिल्ली में पूरा किया है!

लेकिन मज़दूरों और मेहनतकशों से किये गये वायदे के मामले में केजरीवाल ने बेशर्मी से वायदाख़िलाफ़ी और ग़द्दारी करने का काम किया है। 2014 में सरकार बनाने से पहले चुनावों में केजरीवाल ने यह वायदा किया था कि वह दिल्ली में नियमित प्रकृति के कामों पर से ठेका प्रथा ख़त्म कर देगा, न्यूनतम मज़दूरी को पूर्ण रूप से लागू करेगा और सभी श्रम क़ानूनों को लागू करवायेगा। लेकिन जब 2015 में 25 मार्च को दिल्ली के हज़ारों मज़दूर उसे उसका यह वायदा याद दिलाने दिल्ली सचिवालय गये तो उसने भाजपा की मोदी सरकार के साथ मिलीभगत करके इन मज़दूरों पर बर्बर लाठीचार्ज करवाया और हवाई फ़ायर करवाये। मज़दूरों ने बार-बार केजरीवाल को उसके उस वायदे की याद दिलायी लेकिन केजरीवाल सीधे-सीधे उस वायदे से मुकर गया। इसी प्रकार दिल्ली सरकार में 55 हज़ार ख़ाली पदों पर भर्ती करने के वायदे से भी केजरीवाल सरकार मुकर गयी। नये कॉलेज व स्कूल बनाने के वायदे भी केजरीवाल सरकार भूल चुकी है, जिसने दिल्ली में व्यापक मेहनतकश आबादी के लिए रोज़गार सृजित किये होते।

यानी केजरीवाल ने सबसे हर चीज़ का वायदा किया, लेकिन पूरा केवल वह वायदा किया जो उसने पूँजीपतियों से किया था। इसीलिए अब आम आदमी पार्टी को पूँजीपतियों से मिलने वाला चन्दा कहीं ज़्यादा बढ़ गया है। साथ ही, केजरीवाल सरकार ने विधायकों को मिलने वाला वेतन बढ़ाते-बढ़ाते अब रु. 90,000 प्रति माह पर ला दिया है। इसमें भाजपा के दो-चार विधायकों ने भी आपसी गिले-शिकवे भुलाकर केजरीवाल सरकार का पूरा साथ दिया है। पूँजीपतियों से मिलने वाले चन्दे में भारी बढ़ोत्तरी के कारण आम आदमी पार्टी अपने प्रचार पर बेहिसाब पैसा बहा रही है। इसीलिए 2012-13 में आम आदमी पार्टी की कुल 'घोषित' सम्पदा थी रु. 126.15 लाख जबकि 2020-21 में यह बढ़कर रु. 2,182.07 लाख पहुँच चुकी है। इसे फ़ण्ड देने वालों में भारती मित्तल के नियंत्रण वाला प्रूडेण्ट चुनाव ट्रस्ट, बजाज चुनाव ट्रस्ट,

(पेज 10 पर जारी)

आम मेहनतकश जनता का ख़तरनाक और धोखेबाज़ दुश्मन है अरविन्द केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी'

(पेज 9 से आगे)

भारता नम्मदे सम्स्थे ट्रस्ट (बंगलुरू की कम्पनी), गोयनका जैसे पूँजीपतियों का न्यू डेमोक्रेटिक इलेक्टोरल ट्रस्ट, ऑर्बिट, एलेग्रो आदि शामिल हैं। अब या तो ये पूँजीपति बेवक़ूफ़ हैं, या फिर आम आदमी पार्टी उनके ही हितों की नुमाइन्दगी करती है!

केवल इतने से ही हमें समझ लेना चाहिए कि अरविन्द केजरीवाल और उसकी पार्टी 'आप' किसके प्यादे हैं। लेकिन अब तो केजरीवाल ने ऐसा कोई अन्दाज़ा लगाने की ज़रूरत को भी अपनी राजनीतिक नंगई से ख़त्म कर दिया है। गुजरात के विधानसभा चुनावों और दिल्ली के नगर निगम चुनावों में भाजपा जितनी ही आक्रामकता के साथ केजरीवाल फ़ासीवादी हिन्दुत्व की राजनीति का प्रचार-प्रसार कर रहा है। प्रतीकों की और पहचान की राजनीति को आगे कर जनता के असली मुद्दों को ओझल करने की रणनीति में भी वह भाजपा से पीछे नहीं है। पहले केजरीवाल ने नोटों पर लक्ष्मी, गणेश व हिन्दू देवी-देवताओं की तस्वीरें लगाने की माँग की। फिर उसने बंगलादेश के ग़रीब मेहनतकश आप्रवासियों के ख़िलाफ़ भाजपा से भी ज़्यादा ज़हर उगला, जो कि मजबूरी में अपने देश से उजड़कर भारत आये हैं। इसके पहले, उसने कश्मीर में भाजपा द्वारा क़ौमी दमन और साम्प्रदायिकता फैलाने के काम में भाजपा का पूरा साथ दिया था, जनता की एकता को भंग करने के लिए भाजपा की मोदी सरकार द्वारा सीएए-एनआरसी के रूप में की गयी साज़िश में भी भाजपा का दिलो-जान से साथ दिया था और सीएए-एनआरसी विरोधी आन्दोलन का भी विरोध किया था।

लेकिन हिन्दुत्व की राजनीति में साथ देने की भूमिका से अब यह मदारी केजरीवाल आगे जाकर ख़ुद हिन्दुत्व का नया पोस्टर बॉय बनने की जुगत भिड़ा रहा है। यह सम्पादकीय अग्रलेख लिखे जाने के दो दिन पहले ही उसने गुजरात में बयान दिया, "मैं हिन्दू हूँ, अगर मैं हिन्दुत्व की राजनीति नहीं करूँगा तो और क्या करूँगा।" कई लोग इसमें महज़ मौक़े पर गधे को भी बाप बनाने की मौक़ापरस्ती देख रहे हैं (जो केजरीवाल में एक पतित व्यवहारवादी के समान है ही!) लेकिन यह महज़ गिरी हुई मौक़ापरस्ती नहीं है, बल्कि यह केजरीवाल के संघी दिमाग़ की विचारधारा को भी दिखलाता है। केजरीवाल का विवेकानन्द इण्टरनेशनल फ़ाउण्डेशन से गहरा जुड़ाव है, जिसके पीछे मोदी का राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल और आर.एस.एस. खड़े हैं। यह फ़ाउण्डेशन 2009 में बनाया गया था और इसका मक़सद था कांग्रेस की मनमोहन सिंह सरकार को गिराकर भाजपा के लिए रास्ता साफ़ करना। केजरीवाल, योगेन्द्र यादव, अण्णा हज़ारे, किरण बेदी, प्रशान्त भूषण व शान्ति भूषण को साथ लाकर 'इण्डिया अगेंस्ट करप्शन' को खड़ा करने का काम विवेकानन्द फ़ाउण्डेशन ने ही किया था और संघ की इस भूमिका के बारे में अरविन्द केजरीवाल को अच्छी तरह से पता था, जिस बात का खुलासा अरविन्द केजरीवाल द्वारा लात मारकर 'आप' से बाहर किये गये प्रशान्त भूषण ने ख़ुद किया है।

यह बात दीगर है कि इस प्रक्रिया में अरविन्द केजरीवाल की अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती गयीं और वह पूरी तरह से संघ के नियंत्रण में नहीं रहा। लेकिन यह भी सच है कि आज भी अरविन्द केजरीवाल की आर.एस.एस. से कोई दुश्मनी नहीं है और आज भी मोदी-नीत भाजपा और आर.एस.एस., केजरीवाल और 'आप' का इस्तेमाल तमाम राज्यों में विरोधी पार्टियों की सरकारों को गिराने, उनके वोट काटने आदि के लिए कर रहे हैं, ताकि वहाँ भी भाजपा की सरकार बनायी जा सके। पहले पंजाब में भी 'आप' का यही इस्तेमाल संघ परिवार ने किया क्योंकि वह भी जानता है कि 'आप' राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के लिए चुनौती शायद ही बन पाये, लेकिन जिन-जिन राज्यों में यह दूसरी प्रमुख राष्ट्रीय पार्टी यानी कांग्रेस की सरकार गिरा सकती है या उसे सरकार में आने से रोक सकती है, वहाँ उसका इस्तेमाल करने में भाजपा को दूरगामी तौर पर फ़ायदा ही है। कुल मिलाकर, अरविन्द केजरीवाल की स्वायत्त महत्वाकांक्षाओं के बावजूद 'आम आदमी पार्टी' भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में आर.एस.एस. और मोदी के 'गेम प्लान' में बिल्कुल सटीक बैठती है। केजरीवाल वस्तुगत तौर पर संघ परिवार और मोदी का एक मोहरा ही बन चुका है। यही कारण है कि अभी चन्द दिनों पहले ही केजरीवाल ने कहा था, "मैं भाजपा को सत्ता से हटाने के लिए किसी गठबन्धन में नहीं शामिल होने वाला।" मोदी और भाजपा भी ठीक यही चाहते हैं। केजरीवाल का काम हर राज्य में भाजपा-विरोधी वोटों को काटना है और इस प्रक्रिया में वह अगर दिल्ली, पंजाब या गोआ जैसे राज्यों में सरकार बना भी ले तो भाजपा की राष्ट्रीय योजना पर उससे ज़्यादा कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला। फ़र्क़ इसलिए भी नहीं पड़ने वाला क्योंकि केजरीवाल की धुर-दक्षिणपन्थी लोकरंजक व साम्प्रदायिक राजनीति का भाजपा के हिन्दुत्व फ़ासीवाद से कोई अन्तरविरोध या विरोधाभास नहीं है। उल्टे राष्ट्रीय राजनीति में इन दोनों ही राजनीतियों में अच्छा तालमेल बैठता है। दोनों ही मज़दूर वर्ग की धुर विरोधी राजनीतियाँ हैं, दोनों ही धार्मिक कट्टरपन्थ और हिन्दुत्व की सोच से जुड़ी हुई हैं, दोनों ही अन्धराष्ट्रवाद परोसती हैं, दोनों ही दमित क़ौमों के अधिकारों के हनन की हिमायत करती हैं, दोनों ही धार्मिक अल्पसंख्यक-विरोधी हैं, दोनों ही पूँजीपतियों के हितों की नुमाइन्दगी करती हैं (केन्द्रीय सत्ता में होने के नाते भाजपा बड़े व बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग के प्रति ज़्यादा जुड़ाव रखती है, जबकि केजरीवाल छोटे और मँझोले पूँजीपति वर्ग को मज़बूती से इस धुर-दक्षिणपन्थी और फ़ासीवादी राजनीति से जोड़ने का काम करता है)। इन दोनों राजनीतियों का योग हिन्दुत्व फ़ासीवाद की ही सेवा करता है। इसको हम इससे भी समझ सकते हैं कि 2019 में दिल्ली के चुनावों के दौरान केजरीवाल के आपिये बन्दरों ने इलाक़ों-मुहल्लों में नारा ही यह चलाया था : 'देश में मोदी जी, दिल्ली में केजरीवाल'!

'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर हमने केजरीवाल की राजनीति के इस चरित्र को 2011-12 में ही स्पष्ट किया था, जब कि आम आदमी पार्टी अभी बनी भी नहीं थी। उस समय तमाम लिब्बू वामियों और वामी लिब्बुओं ने (जो वास्तव में टुटपुँजिया उदारवादी राजनीति है, मज़दूर वर्ग को नुक़सान पहुँचाती है और प्रतिक्रियावादी दक्षिणपन्थी पूँजीवादी राजनीति को परास्त करने की क्षमता नहीं रखती) हम पर संकीर्णतावादी होने का आरोप लगाया था। तमाम कम्युनिस्ट कहे जाने वाले और अपने आपको कम्युनिस्ट समझने वाले भी केजरीवाल का उभार देखकर ईर्ष्या की भावना से ग्रस्त थे, केजरीवाल को भाजपा के विकल्प के तौर पर भी पेश कर रहे थे, उससे मोर्चा भी बनाना चाहते थे और अपने आपसे पूछ रहे थे, "केजरीवाल ने ऐसा क्या किया जो हम नहीं कर पाये!" हम ऐसे संशोधनवादियों और दिग्भ्रमित "कम्युनिस्टों" को तब भी इतना ही कह रहे थे और आज भी यही कहेंगे : "आप अब तक केजरीवाल से ज़्यादा कुछ अलग नहीं कर रहे थे, आप भी टुटपुँजिया व छोटे पूँजीपति वर्गों के प्रतिनिधि हैं, केजरीवाल भी। बस आप टुटपुँजिया पूँजीपति वर्ग को उदार वाम की ओर जीतना चाहते हैं, जबकि वह अपनी सम्भावनासम्पन्नता और प्रकृति से ही दक्षिणपन्थी और फ़ासीवादी राजनीति की ओर ज़्यादा आकर्षित होता है। इसलिए इस मामले में आप केजरीवाल से परास्त होने के लिए अभिशप्त थे।"

विकल्पहीनता की स्थिति में आज केजरीवाल की राजनीति की ओर मज़दूर वर्ग और मेहनतकश वर्गों का एक हिस्सा भी आकर्षित है। लेकिन वह अपने 8 वर्षों के अनुभव से समझ चुका है कि केजरीवाल किसका नुमाइन्दा है। मोदी-शाह की भाजपा के विकल्प के तौर पर अपनी वर्ग चेतना की कमी के कारण पूँजीवादी चुनावी राजनीति के दायरे में उसे तात्कालिक तौर पर 'आप' एक विकल्प के तौर पर दिख रही है और 'फ्री बिजली और पानी' के झूठे प्रचार का भी उसके ऊपर असर है। इसलिए दिल्ली में मज़दूर वर्ग और मेहनतकश आबादी के भी विचारणीय हिस्से ने केजरीवाल को वोट दिया था। आगे भी शायद दे। इन नगर निगम चुनावों में भी शायद वह केजरीवाल को ही वोट दे। लेकिन यह कोई विचारधारात्मक-राजनीतिक समर्थन नहीं है, बल्कि विकल्पहीनता की स्थिति है। साथ ही, जिस मात्रा में कुछ भ्रम केजरीवाल और आम आदमी पार्टी के प्रति बना हुआ है, उसे दूर करने के लिए सर्वहारा वर्ग के हिरावल को लगातार प्रचार करना चाहिए।

वजह यह कि केजरीवाल और आम आदमी पार्टी की राजनीति की छोटी गन्दी नाली दूरगामी तौर पर मोदी और भाजपा व संघ परिवार के ही बड़े गन्दे नाले में जाकर प्रवाहित व समाहित हो जाती है। यह बात हम पहले भी कई बार कह चुके हैं और आज भी दुहरा रहे हैं। अब यह बात व्यापक प्रगतिशील दायरे में भी अधिकांश लोग समझ रहे हैं, जो पहले हमें यही बात कहने के लिए कोसते थे और कहते थे कि हम भाजपा के विकल्प को कमज़ोर कर रहे हैं! अब उन्हें भी यह समझ आ रहा है कि केजरीवाल और 'आप' भाजपा के विकल्प नहीं बल्कि उसकी ही फ़ासीवादी राजनीति के सहायक हैं।

इस रूप में केजरीवाल की राजनीति मेहनतकश व मज़दूर वर्ग के लिए बेहद ख़तरनाक है; यह घास में छिपा हरे रंग का साँप है और इससे मज़दूरों-मेहनतकशों को एकदम सावधान हो जाना चाहिए, वरना बाद में बहुत पछताना पड़ेगा।

ईडब्ल्यूएस आरक्षण : मेहनतकश जनता को बाँटने की शासक वर्ग की एक और साज़िश

(पेज 8 से आगे)

व्यवस्था को बनाये रखने के लिए एक लुकमा फेंककर जनता को जातिगत आधार पर बाँटना है। इसका समर्थन या विरोध करने वाले जाने-अनजाने एक ही साज़िश का शिकार हो जाते हैं।

ऊपर दिये गये सरकारी नौकरियों की उपलब्धता के आँकड़ों को देखने के बाद हमें यह तो साफ़ दिख रहा है कि बेरोज़गारों की विशालकाय संख्या के सामने यह नौकरियाँ शून्यप्राय ही हैं। आप कह सकते हैं कि नौकरियाँ निजी क्षेत्रों में भी होती हैं। हम उसे यहाँ शामिल नहीं कर रहे हैं क्योंकि आरक्षण वहाँ लागू नहीं होता। लेकिन इतना ज़रूर कहना चाहेंगे कि निजी क्षेत्र में भी नौकरियों की हालत ख़स्ता ही है। तभी तो वर्ल्ड बैंक ने प्रति महीने 13 लाख नौकरियों की आवश्यकता जतायी है। वर्ल्ड बैंक सरकारी और ग़ैर सरकारी नौकरी में फ़र्क़ नहीं करता। वह बस नौकरियों के अवसर की बात कर रहा है जिसमें दोनों शामिल हैं।

सच्चाई यह है कि आज आरक्षण एक ग़ैर-मुद्दा बन चुका है, जिस पर आम मेहनतकश जनता को आपस में लड़वाया जा रहा है। हम ऊपर देख चुके हैं कि दलित मुक्ति के रास्ते के तौर पर आरक्षण को देखना, या सवर्णवादी मानसिकता से आरक्षण को समाप्त करने की बात करना, दोनों ही ग़लत कार्यदिशा है। आज यदि सौ प्रतिशत आरक्षण दे दिया जाये तो भी दलित व आदिवासी आबादी में से 2 प्रतिशत को भी इसका लाभ नहीं मिलेगा और यदि आरक्षण को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जाये तो 2 प्रतिशत सवर्ण आबादी को भी इसका लाभ नहीं मिलेगा। इन सभी जातियों के मेहनतकशों को तो इसका लाभ मिलने का सवाल ही नहीं पैदा होता। ईडब्ल्यूएस आरक्षण का भी कोई लाभ सवर्ण जातियों की मेहनतकश आबादी को नहीं मिलने वाला है और यहाँ तक कि इनमें मौजूद मध्यवर्ग को भी इसका कोई लाभ नहीं मिलेगा। ऐसे में, आरक्षण की समूची राजनीति ही जनता को बाँटकर राज करने की शासक वर्ग की रणनीति का अंग मात्र है। हमें इस बात को समझना चाहिए। ऐसे में, संघर्ष का सही मुद्दा और लाइन यह है कि सभी को समान एवं निःशुल्क शिक्षा और सभी को रोज़गार की माँग को उठाते हुए सभी जातियों की व्यापक मेहनतकश आबादी का एक क्रान्तिकारी और जुझारू जनान्दोलन खड़ा किया जाये। आज का वक़्त इसके लिए सबसे उपयुक्त है। ऐसी राजनीतिक लाइन पर खड़ा जनान्दोलन ही आज आरक्षण और पहचान की राजनीति को शिकस्त दे सकता है और व्यापक मेहनतकश जनता की क्रान्तिकारी एकजुटता को भी स्थापित कर सकता है और साथ ही जनता के बीच मौजूद जातिगत पूर्वाग्रहों के ख़िलाफ़ लड़ने और उन्हें दूर करने का भी रास्ता यही एकजुटता हो सकती है।

दिल्ली एमसीडी चुनाव में मेहनतकश जनता के समक्ष विकल्प क्या है?

● आदित्य

4 दिसम्बर को दिल्ली में एमसीडी के चुनाव होने वाले हैं। मतलब यह कि फिर से सभी चुनावबाज़ पार्टियों द्वारा झूठे वादों के पुल बाँधे जायेंगे। चाहे भाजपा हो, कांग्रेस हो या आम आदमी पार्टी, सभी के द्वारा जुमले फेंके जायेंगे। ऐसे में मेहनतकश जनता के पास सिर्फ़ कम बुरा प्रतिनिधि चुनने का ही विकल्प होता है और आज के समय में तो कम बुरा तय करना भी मुश्किल होता जा रहा है। सच्चाई तो यही है कि इन सभी में से कोई भी मज़दूर-मेहनतकश जनता का विकल्प नहीं है। पर इस बार मेहनतकश-मज़दूरों के एक क्रान्तिकारी विकल्प के रूप में "भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)" द्वारा करावल नगर पश्चिम (वार्ड 248) और शाहाबाद डेरी (वार्ड 28) से दो प्रतिनिधि खड़े किये जा रहे हैं। मतलब यह कि आम मेहनतकश आबादी के पास भी कम-से-कम इन दो वॉर्डों में अपना विकल्प, एक क्रान्तिकारी विकल्प चुनने का मौक़ा है। 'मज़दूर बिगुल' पहले भी RWPI की हिमायत करता रहा है क्योंकि RWPI का अन्तिम लक्ष्य सिर्फ़ चुनाव में भागीदारी नहीं बल्कि क्रान्तिकारी रास्ते से मज़दूर सत्ता की स्थापना और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करना है।

हमें साथ में यह भी जान लेने की ज़रूरत है कि पूँजीवादी व्यवस्था में कराये गये चुनाव के ज़रिए बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार आदि से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। कारण यह कि यह पूरा चुनावी तंत्र ही धनबल और बाहुबल पर चलता है। चुनावों में बड़े व छोटे-मँझोले पूँजीपति लाखों-करोड़ों का चन्दा चुनावबाज़ पार्टियों को देते हैं, जो बदले में अपने पूरे शासनकाल के दौरान तन-मन-धन से उनकी सेवा में लगी रहती हैं। इसलिए मेहनतकश आबादी की सभी परेशानियों का ख़ात्मा सिर्फ़ और सिर्फ़ इन्क़लाबी तरीक़े से ही हो सकता है जैसाकि रूस के मेहनतकश अवाम ने करके दिखाया था और जिस इन्क़लाब की बात शहीद-ए-आज़म भगतसिंह ने भी की थी। लेकिन उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए यह ज़रूरी है कि मज़दूरों के पास उनका अपना एक स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष हो, जो उनके हक़ और अधिकार की बात कर सके और तमाम मुद्दों पर आम मज़दूरों का पक्ष स्पष्ट तौर पर रख सके और जो पूँजीपतियों के नहीं बल्कि मज़दूर वर्ग और इन्साफ़पसन्द लोगों के दम पर चलता हो। पूँजीवादी चुनाव एक ऐसी ही महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक क्षेत्र है। यहाँ पर भी रणकौशलात्मक तौर पर क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग द्वारा हस्तक्षेप अनिवार्य होता है अन्यथा मज़दूर वर्ग इस या उस पूँजीवादी दल के पीछे घिसटता रहता है। संक्षेप में, समाज के हर राजनीतिक क्षेत्र में मज़दूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक उपस्थिति अनिवार्य होती है।

दूसरा कारण यह है कि पूँजीवादी जनवाद के दायरे में जो अधिकार मज़दूर वर्ग लड़कर हासिल कर सकता है, वह भी हासिल करने के लिए उसके क्रान्तिकारी राजनीतिक पक्ष की पूँजीवादी चुनावों में भी मौजूदगी होना अनिवार्य है। आज तक़रीबन सभी पार्टियाँ बड़े पूँजीपतियों और व्यापारियों या फिर छोटे और मँझोले मालिकों व व्यापारियों की ही नुमाइन्दगी करती हैं। जैसे भाजपा और कांग्रेस बड़े पूँजीपतियों और व्यापारियों की पार्टियाँ हैं, वहीं 'आम आदमी पार्टी' छोटे और मँझोले मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों के हितों की नुमाइन्दगी करती है। अन्य चुनावी पार्टियों का चरित्र भी कुछ ऐसा ही है और वे सभी छोटे या बड़े, औद्योगिक, वित्तीय या व्यापारिक पूँजीपति वर्ग और उनकी चाकरी करने वाले उच्च मध्य वर्गों की ही नुमाइन्दगी करती हैं। इस समय कोई ऐसी पार्टी नहीं है जो कि दिल्ली के क़रीब 75 फ़ीसदी ग़रीब और निम्न मध्यवर्ग के आम मेहनतकश लोगों और मज़दूरों की नुमाइन्दगी करती हो। चूँकि चुनावों में मज़दूरों-मेहनतकशों का कोई स्वतंत्र पक्ष मौजूद ही नहीं होता, इसलिए हम कभी इस तो कभी उस पूँजीवादी पार्टी को वोट देने को मजबूर होते हैं।

चुनावबाज़ पार्टियों की हक़ीक़त

सबसे पहले बात दिल्ली की सत्ता सम्भाल रहे आम आदमी पार्टी की करते हैं। यह तो समय के साथ ही साफ़ हो गया है कि ज़रूरत पड़ने पर वोट बैंक की फ़िरकापरस्त राजनीति करने के मामले में यह भी भाजपा से कहीं कम नहीं है और किसी भी स्तर तक जाने को तैयार है। चाहे हिन्दू वोट बैंक के लिए साम्प्रदायिक तनाव बनाने की बात हो या ऐसी कोई भी बयानबाज़ी करने की। हर क़दम पर यह अपनी अन्ध-धर्मभक्ति और अन्ध राष्ट्रवाद के लिए नीचता पर उतरते रहे हैं। बात करें दिल्ली में किये गये काम की तो यह अपने पूरे कार्यकाल में दिल्ली के खाते-पीते मालिकों-व्यापारियों की सेवा में जी-जान से लगी हुई है। चुनाव में टिकट भी ऐसे फ़ैक्टरी मालिकों और ठेकेदारों को ही दी जा रही है। दिल्ली की आँगनबाड़ी की महिलाएँ लगातार 38 दिनों तक केजरीवाल के घर के बाहर हड़ताल पर बैठी रहीं, लेकिन वह एक बार उनसे मिलने तक नहीं आया और अलग-अलग तिकड़म भिड़ाकर और भाजपा के राज्यपाल के साथ मिलकर हड़ताल को तोड़ने में लगा रहा तो वहीं दूसरी तरफ़ पंजाब में चुनाव के समय वहाँ की आँगनबाड़ी कर्मियों से झूठे वादों के पुल बाँधता रहा। उसके किये गये तमाम वादे झूठे साबित हुए हैं। आइए, एक-एक करके उसके झूठों पर नज़र डालें।

'आप' की सरकार ने यह वादा

(पेज 15 पर जारी)

दुनिया की सबसे बड़ी तकलोलॉजी कम्पनियों में भारी छँटनी

विश्व पूँजीवाद में संकट के नये दौर की आहट से घबराया पूँजीपति वर्ग

● आनन्द

जिस समय कोरोना महामारी अपने चरम पर थी, उस समय दुनिया के तमाम देशों में लॉकडाउन की वजह से उत्पादन ठप हो जाने के कारण ज़्यादातर सेक्टरों में कम्पनियों के मुनाफ़े में गिरावट आयी थी। लेकिन उस दौर में चूँकि लोग ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्मों पर पहले से ज़्यादा समय बिताते थे इसलिए कम्प्यूटर व इण्टरनेट की दुनिया से जुड़े कुछ सेक्टरों जैसे आईटी, ई-कॉमर्स, सोशल मीडिया आदि में चन्द इज़ारेदार कम्पनियों के मुनाफ़े में ज़बर्दस्त उछाल देखने में आया था। लेकिन लॉकडाउन हटने के बाद ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्मों पर लोगों की मौजूदगी के समय में कमी आने की वजह से और विश्व पूँजीवाद के आसन्न संकट की आहट सुनकर इन कम्पनियों को भी अपने मुनाफ़े की दर में गिरावट का ख़तरा दिखने लगा है। यही वजह है कि हाल के दिनों में ट्विटर, मेटा (फ़ेसबुक, व्हाट्सऐप और इंस्टाग्राम की पैरेंट कम्पनी), एमेज़ॉन, माइक्रोसॉफ़्ट, एचपी, स्नैपचैट और इंटेल जैसी शीर्ष प्रौद्योगिकी कम्पनियों ने अपने कर्मचारियों की संख्या में 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक की कटौती करने की घोषणा की है।

अमेरिका व पश्चिम यूरोप की अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भरता की वजह से भारत के आईटी सेक्टर में भी इस संकट का असर होना तय है। वास्तव में प्रौद्योगिकी कम्पनियों में छँटनी की यह प्रक्रिया इस साल की शुरुआत से ही शुरू हो चुकी थी। इस साल अब तक दुनिया की 780 प्रौद्योगिकी कॅम्पनियाँ एक लाख 20 हज़ार से भी ज़्यादा लोगों को नौकरी से निकाल चुकी हैं।

ग़ौरतलब है कि विश्व पूँजीवाद के संकट के नये दौर के संकेत कोरोना महामारी के पहले से ही मिलने शुरू हो चुके थे। 2008 के विश्व पूँजीवाद के संकट से निपटने के लिए जो मौद्रिक उपाय लाये गये उन्होंने एक नये संकट की ज़मीन तैयार करने का ही काम किया। अमेरिका सहित दुनिया के तमाम देशों के केन्द्रीय बैंकों ने अर्थव्यवस्थाओं में निवेश को बढ़ाने के मक़सद से ब्याज दरें बेहद कम कर दी थीं और अर्थव्यवस्था में मुद्रा का परिचलन बढ़ा दिया था, परन्तु अर्थव्यवस्था में आयी इस नयी तरलता का इस्तेमाल अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्र में करके उत्पादन बढ़ाने के बजाय तमाम वित्तीय कम्पनियों ने झटपट मुनाफ़ा कूटने के लालच में सट्टेबाज़ी, शेयर मार्केट और क्रिप्टोकरेंसी जैसे अवास्तविक पूँजी वाले क्षेत्रों में किया जिसकी वजह से पूरी दुनिया में मालों की क़ीमतों के बढ़ने की शुरुआत महामारी से पहले ही हो चुकी थी।

महामारी ने इस संकट को और गहराने का काम किया है। लॉकडाउन की वजह से तमाम मालों की आपूर्ति ज़बर्दस्त ढंग से प्रभावित हुई और लॉकडाउन से हुए नुक़सान से उबरने के लिए तमाम अर्थव्यवस्थाओं में और ज़्यादा मुद्रा झोंकने का काम किया गया जिसकी वजह से मुद्रास्फ़ीति की दर लगातार बढ़ती रही। ऊपर से यूक्रेन युद्ध की वजह से तेल, गैस, गेहूँ, खाद एवं तमाम खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में भारी कटौती होने के चलते महँगाई की दर और बढ़ी। अभी भी चीन में 'ज़ीरो कोविड नीति' के तहत कई शहरों में लॉकडाउन लगा हुआ है जिसकी वजह से कई अहम मालों की आपूर्ति अभी तक सामान्य नहीं हो पायी है। इन सब वजहों से मुद्रास्फ़ीति की दर ख़तरे की सीमा के पार जा चुकी है। यही वजह है कि वर्ल्ड बैंक और आईएमएफ़ सहित तमाम पूँजीवादी थिंक टैंक मुद्रास्फ़ीति पर नियंत्रण करने के मक़सद से सरकारों पर ब्याज दरों को बढ़ाने का दबाव बना रहे हैं। परन्तु मुद्रा परिचलन की रफ़्तार घटाने का नुक़सान मन्दी के रूप में आ रहा है क्योंकि उससे निवेश के लिए ज़रूरी मुद्रा की कमी हो रही है। इस प्रकार पूँजीवाद के सामने एक तरफ़ कुँआ है तो दूसरी तरफ़ खाई है। मुनाफ़े का इंजन तेज़ करने के लिए अर्थव्यवस्था में मुद्रा झोंकी गयी, लेकिन उसकी वजह से मुद्रास्फ़ीति की दर बढ़ गयी और मुद्रास्फ़ीति की दर को कम करने के लिए बाज़ार से मुद्रा वापस लेने पर नये सिरे से संकट की आहटें सुनाई देने लगी हैं।

यही वह परिदृश्य है जिसमें ट्विटर, मेटा, एमेज़ॉन, माइक्रोसॉफ़्ट, एचपी, स्नैपचैट और इंटेल जैसी कम्पनियों ने बड़े पैमाने पर छँटनी की घोषणा की है। इनके अलावा कई अन्य प्रौद्योगिकी कम्पनियों ने मुनाफ़े की दर में गिरावट के संकेत भाँपते हुए नयी भर्ती पर पूरी तरह से रोक लगा दी है। इनमें ट्विटर के नये मालिक एलॉन मस्क ने सबसे ज़्यादा अपमानजनक तरीक़े से अपनी कम्पनी के लगभग साढ़े सात हज़ार कर्मचारियों में से 50 फ़ीसदी लोगों को बाहर का रास्ता दिखाया और शेष को नये 'हार्डकोर' तरीक़े से काम करने के लिए आगाह किया। दूसरे शब्दों में उन्हें ज़्यादा समय के लिए और प्रबन्धन की ज़्यादा निगरानी में काम करने के लिए तैयार रहना होगा। जो ऐसा करने के लिए तैयार नहीं होंगे उन्हें कम्पनी से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाएगा। मस्क द्वारा अपमानजनक शैली अपनाये जाने के विरोध में ट्विटर के कई कर्मचारियों ने स्वेच्छा से कम्पनी से त्यागपत्र दे दिया।

ग़ौरतलब है कि ट्विटर जैसी प्रौद्योगिकी कम्पनियों में काम करने वाले इंजीनियर आम तौर पर बहुत मोटी तनख़्वाह पाते हैं और उनका जीवन स्तर आम मज़दूर से काफ़ी बेहतर होता है। इसलिए सामान्य समय में वे पूँजीवादी व्यवस्था के पक्ष में दलील देते हुए नज़र आते हैं, हालाँकि वे होते बौद्धिक मज़दूर ही हैं क्योंकि वे अपनी बौद्धिक श्रमशक्ति बेचकर मालिक के लिए मुनाफ़ा पैदा करने का काम करते हैं। लेकिन वे ख़ुद को मज़दूर वर्ग से अलग समझते हैं और सामान्य परिस्थितियों में पूँजीवाद की वक़ालत करते हुए मिलते हैं। उनमें से कई तो मज़दूरों को हिक़ारत भरी नज़र से भी देखते हैं। लेकिन संकट की परिस्थिति आते ही ऐसे लोगों को भी पूँजीवाद की असलियत से रूबरू होना पड़ता है।

इलॉन मस्क द्वारा अपने कर्मचारियों के साथ किये गये अपमानजक बर्ताव के बाद ऐसे तमाम लोगों ने मस्क के तानाशाहाना और अमानवीय आचरण के ख़िलाफ़ ख़ूब बोला और लिखा। परन्तु सच्चाई तो यह है कि इलॉन मस्क जो कुछ कर रहा है वह पूँजीवाद के तर्क से बिल्कुल जायज़ है। ग़ौरतलब है कि मस्क ने हाल ही में अपनी अन्य कम्पनियों से प्राप्त मुनाफ़े के एक हिस्से से और बैंकों से क़र्ज़ लेकर 44 अरब डॉलर की भारी क़ीमत में ट्विटर को ख़रीदा है जिसका मक़सद ट्विटर पर आने वाले विज्ञापनों की बदौलत मुनाफ़ा कमाने के साथ ही साथ टेस्ला व स्पेसएक्स जैसी अपनी अन्य कम्पनियों का प्रचार करने के लिए ट्विटर के प्लेटफ़ॉर्म का इस्तेमाल करना है। इस मक़सद को पूरा करने के लिए वो किसी भी हद तक गुज़र सकता है। इलॉन मस्क आज के पतनशील पूँजीवाद का एक प्रातिनिधिक चरित्र है। उसके तानाशाहाना, मानवद्रोही और आत्ममुग्ध व्यक्तित्व का निर्माण वास्तव में इस पूँजीवादी व्यवस्था ने ही किया है जिसकी बदौलत यह सनकी व्यक्ति आज दुनिया का सबसे सफल और सबसे बड़ा पूँजीपति बना है। इसलिए अगर किसी को इलॉन मस्क जैसे शख़्स नाकाबिले बर्दाश्त है तो उसे वास्तव में यह व्यवस्था नाकाबिले बर्दाश्त होनी चाहिए।

ब्राज़ील में लूला के जीतने के निहितार्थ

● केशव

इस वर्ष ब्राज़ील में हुए राष्ट्रपति चुनाव में वाम पक्ष की ओर से लुइज़ इनेसियो लूला डा सिल्वा के जीतने के बाद ब्राज़ील समेत भारत की लिबरल जमात ब्राज़ील में फ़ासीवाद पर "मुक्कमल जीत" का जश्न मनाकर लहालोट हो रही है। ब्राज़ील के फ़ासीवादी नेता बोल्सोनारो की इस चुनाव में होने वाली हार के साथ ही इस बात का प्रचार पूरे ज़ोर-शोर से किया जा रहा है कि अब ब्राज़ील में आम मेहनतकश जनता के लिए बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता खुल चुका है। लेकिन इन तमाम प्रचारों और शोर के बीच ब्राज़ील की जनता की स्मृति को थोड़ा पीछे ले जाकर देखें तो हम ब्राज़ील समेत भारत में लूला के समर्थन में उठ रहे खोखले नारों की असलियत जान पायेंगे।

पहली बार 2002 के अन्त में चुनकर आयी लूला की पार्टी 'वर्कर्स पार्टी' (PT) के शुरू के 2 वर्ष के कार्यकाल में ही इसकी सच्चाई जनता के सामने उजागर होनी शुरू हो गयी। अपने कार्यकाल के दौरान लूला की सरकार ने सरकारी कर्मचारियों की पेंशन पर हमले किये। इसके साथ ही पार्टी में जिन्होंने भी इसका विरोध किया उन्हें पार्टी से बाहर का रास्ता दिखा दिया गया। साथ ही इस पार्टी को इस दौरान बड़े कॉर्पोरेट घरानों से भी काफ़ी फण्ड मिले। अपने पहले कार्यकाल के दौरान ही लूला सरकार ने वर्ग सहयोग के नाम पर पूँजीपति वर्ग के सहयोग में जुट गयी, जिसके नतीजे के तौर पर लूला सरकार को जनता के भारी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। 2003 के अगस्त महीने में 80,000 सरकारी कर्मचारियों के चार महीनों की हड़ताल, 1,20,000 पोस्टल कर्मचारियों की हड़ताल, 1,40,000 तेल कर्मचारियों की हड़ताल इसके प्रतिनिधिक उदाहरण हैं। वर्ष 2006 के चुनाव के पहले राउण्ड में जनता के एक बड़े हिस्से ने लूला का बहिष्कार किया, जो कि जनता की तरफ़ से लूला सरकार को एक चेतवानी थी और साथ ही जनता के बीच विकल्पहीनता का नतीजा। इसके बाद लूला दूसरे राउण्ड में अपने खोखले वायदों के ज़रिए वोट बटोरने में क़ामयाब हुआ। इस चुनाव के बाद लूला ने तमाम बुर्जुआ पार्टियों के सामने गठबन्धन का प्रस्ताव रखा जिसमें से कई बुर्जुआ पार्टियाँ 'PT' के साथ इस गठबन्धन में शामिल भी हुईं। इसके साथ ही लूला ने इस दौरान बड़े-बड़े कॉर्पोरेट घरानों के हित में कई नीतियाँ बनायीं।

जैसे-जैसे व्यवस्था का संकट बढ़ता गया, वैसे-वैसे पूँजीपति वर्ग को एक ऐसे तानाशाह शासक की ज़रूरत पड़ने लगी जो डण्डे की ज़ोर पर उनकी नीतियों को लागू करवा सके। इसलिए ही 2015 में मनी लॉण्ड्रिंग के मामले में लूला को जेल भेजा गया, और पूँजीपति वर्ग ने बोल्सोनारो की प्रतिक्रियावादी राजनीति के फलने-फूलने के लिए ख़ूब पैसा बहाया। अन्य देशों की तरह ब्राज़ील में भी बोल्सोनारो की फ़ासीवादी राजनीति ने जनता के गुस्से को प्रतिक्रियावादी राजनीति की ओर धकेलकर एक सामाजिक आन्दोलन खड़ा किया, और यहाँ ज़मीनी स्तर पर धुर-दक्षिणपन्थ ने अपनी पैठ बना ली। साथ ही देशभर के सरकारी महकमों में धुर-दक्षिणपन्थ और अर्द्ध-फ़ासीवाद की पकड़ मज़बूत हुई। और इसके नतीजे के तौर पर वर्ष 2018 में बोल्सोनारो सत्ता में आया। सत्ता में आने के बाद उसने पूँजीपरस्त नीतियों को और भी अधिक नंगे तरीक़े से लागू करने शुरू कर दिया, और आम जनता के तमाम हक़ों और अधिकारों को कुचलना शुरू कर दिया। कोरोना के दौर में बोल्सोनारो सरकार की लापरवाही की वजह से 7 लाख से भी अधिक लोग मारे गये। और इस दौरान भी उसने मज़दूरों-मेहनतकशों के हक़ों और अधिकारों को कुचलने का काम और भी तेज़ी से किया।

जनता के बीच बोल्सोनारो के लिए बढ़ता असन्तोष एक लम्बी दूरी में व्यवस्था के ख़िलाफ़ असन्तोष बन सकता था। इस बात को भली-भांति समझने वाले पूँजीपति वर्ग ने एक बार फिर जनता के बीच लूला को खड़ा करने की कोशिश में जुट गया। और इसके नतीजे के तौर पर इस वर्ष के चुनाव में बोल्सोनारो के सामने लूला का चेहरा एक "बेहतर विकल्प" के रूप में पेश किया गया। और इसी प्रचार का शिकार आज भारत की लिबरल जमात हो रही है जिसे लूला का उभार बोल्सनारो की फ़ासीवादी राजनीति के बरक्स एक "प्रगतिशील विकल्प" के तौर नज़र आ रहा है। लूला का इस चुनाव में जीतना और कुछ नहीं बल्कि पूँजीपति वर्ग द्वारा जनता के गुस्से पर क़ाबू पाने का ही एक हथकण्डा है।

लूला की सुधारवादी राजनीति

'वर्ग सहयोग' की राजनीति करने वाले इतिहास में भी सुधारवादी तथा संशोधनवादी धड़े के नाम से कुख्यात रहे हैं। लूला की राजनीति को सुधारवादी राजनीति का क्लासिकीय उदाहरण कहना गलत नहीं होगा। लूला के पिछले वर्षों का कार्यकाल उसकी सुधारवादी राजनीति की पुष्टि करता है। उसके कुछ बयानों पर ग़ौर करने पर हमें पता चलता है कि उसकी राजनीति इस व्यवस्था को सही ठहराने से अधिक कुछ नहीं करती। वर्ष 2019 में लूला द्वारा दिये गये बयान, जिसमें उसने कहा कि न्याय प्रणाली के 'सड़े हुए पक्ष' ने, लोक अभियोजक के कार्यालय के 'सड़े हुए पक्ष' ने, संघीय पुलिस के 'सड़े हुए पक्ष' ने और संघीय राजस्व विभाग के 'सड़े हुए पक्ष' ने वामपन्थियों को अपराधी बनाने और लूला का अपराधीकरण की कोशिश की है, इस व्यवस्था के किसी सही पक्ष की ओर इशारा करते हैं। जबकि सच्चाई तो यह है कि इस व्यवस्था का हर पक्ष आम मेहनतकश और मज़दूरों के विरोध में खड़ा है और आम मेहनतकश जनता के लिए समूची पूँजीवादी व्यवस्था ही सड़ी हुई है। जब पूँजीवाद मज़दूरवर्गीय राजनीति से सीधे टक्कर लेने की हालत में नहीं होता तो वह सुधारवाद और संशोधनवाद के रूप में मज़दूर वर्ग की राजनीति का खोल ओढ़कर आता है। यह मज़दूर वर्ग को बताता है कि समाज में वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग की बात करनी चाहिए। वह इस बात के पूरी तरह से छिपा देता है कि बुर्जुआ जनवाद अपने सार रूप में आम जनता पर बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकत्व होता है। यह मेहनतकशों और मज़दूरों को इतनी ही आज़ादी देता है कि वे बाज़ार में अपनी शारीरिक श्रमशक्ति और मानसिक श्रमशक्ति बेचकर जीवित रह सकें। वह मौजूदा लूटेरी पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की बजाय इस व्यवस्था को अलग-अलग रूपों से सही ठहराने का काम करता है।

सभी प्रकार के सुधारवादी और संशोधनवादी क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के विभीषण, जयचन्द और मीरजाफर होते हैं। वे मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ वर्ग के एजेण्ट का काम करते हैं। वे पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति का काम करते हैं। ये मज़दूर वर्ग के सामने खड़े खुले दुश्मन से भी अधिक ख़तरनाक होते हैं। सुधारवादी और संशोधनवादी पूँजीवादी संसदीय राजनीति को ही व्यवस्था-परिवर्तन का माध्यम तो मानते ही हैं, साथ ही मज़दूर वर्ग को राज्यसत्ता के ध्वंस के लक्ष्य से दूर रखने के मक़सद से, वे उनके बीच न तो क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार करते हैं, न ही उनके राजनीतिक संघर्षों को आगे विकसित करते हैं। राजनीति के नाम पर बस वे चुनावी राजनीति करते हैं और मेहनतकश जनता का इस्तेमाल मात्र वोट बैंक के रूप में करते हैं। ये पार्टियाँ और इनकी ट्रेड यूनियनें प्राय: मज़दूरों को वेतन-भत्तों आदि की माँगों को लेकर चलने वाले आर्थिक संघर्षों में ही उलझाये रहती हैं और उनकी चेतना को पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दी में बाँधे रखती हैं। प्राय: सीधे-सीधे या घुमा-फिराकर ये यह तर्क देती हैं कि आर्थिक संघर्ष ही आगे बढ़कर राजनीतिक संघर्ष में बदल जाता है। इसके विपरीत सच तो यह है कि आर्थिक संघर्ष इस व्यवस्था के भीतर मज़दूर वर्ग को संगठनबद्ध होकर अपनी माँगों के लिए लड़ना सिखाता है, लेकिन वह स्वयं विकसित होकर राजनीतिक संघर्ष नहीं बन जाता। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और राजनीतिक संघर्ष में उसे उतारने का काम मज़दूर वर्ग के हिरावल को, जो कि सर्वहारा पार्टी के रूप में संगठित होता है, आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ शुरू से ही करना होता है। इस तरह अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ते हुए मज़दूर वर्ग बुर्जुआ राज्यसत्ता को चकनाचूर करने के अपने ऐतिहासिक मिशन को समझता है और उस दिशा में आगे बढ़ता है। मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी सर्वहारा वर्ग के हिरावल के रूप में इस काम में नेतृत्वकारी भूमिका निभाती है। संशोधनवादी पार्टियाँ जन संघर्षों को मात्र आर्थिक संघर्षों तक सीमित कर देती हैं और राजनीति के नाम पर केवल वोट बैंक की राजनीति करती हैं।

धुर-दक्षिणपन्थ और फ़ासीवाद के "पराजय" के मुग़ालते में लिबरल जमात

आज लूला की जीत के बाद जो लिबरल जमात धुर-दक्षिणपन्थ और फ़ासीवाद पर निर्णायक जीत का जश्न मनाकर खुशी में लहालोट हो रही है, उन्हें न तो फ़ासीवाद के बारे में कोई समझ है, न ही समाज विज्ञान की कोई जानकारी। यह लिबरल जमात व्यवहारवादी नज़रिए से दुनिया को देखती है। यही जमात फ़ासीवाद के उभार के दौरान से मुँह फेर लेती है और ऐसे किसी संशोधनवादी राजनीतिक के आंशिक तौर पर भी जीत के साथ खुशी का ढोल पीटना शुरू कर देती है। पहली बात तो बोल्सोनारो और लूला के वोट में बहुत अधिक फर्क नहीं है। इस चुनाव में लूला को 50.2% वोट मिले हैं, वहीं बोल्सोनारो को 49.8% वोट मिले हैं। दूसरा, केवल चुनाव में हार जाने के कारण यह कतई नहीं कहा जा सकता कि ब्राज़ील में धुर-दक्षिणपन्थ पराजित हो गया है, क्योंकि धुर-दक्षिणपन्थ और प्रतिक्रियवादी आन्दोलनों की बुनियाद चुनावी जीत नहीं होती, बल्कि यह टुटपुँजिया वर्ग का एक प्रतिक्रियावादी आन्दोलन होता है या फिर टुटपुँजिया वर्गों में सामाजिक आधार की बुनियाद पर खड़ा होता है और बड़ी पूँजी की सेवा करता है। धुर-दक्षिणपन्थ और विशेष तौर पर फासीवाद की पराजय महज़ चुनावों में प्रतिक्रियवादी दलों की हार पर निर्भर नहीं करती। उसे क्रान्तिकारी जनान्दोलन और समाजवादी क्रान्ति ही निर्णायक तौर पर परास्त कर सकती है। अन्यथा, वह समय-समय पर आने वाले ज्वरों या दौरों के समान अपनी शक्ति को बढ़ाता है और मज़दूर वर्ग को खण्ड-खण्ड में विभाजित करता है और उसके प्रतिभार के तौर पर टुटपुँजिया वर्गों के भीतर निहित प्रतिक्रिया को वास्तविकता में तब्दील कर उसका इस्तेमाल करता है।

फ़ासीवाद समेत धुर-दक्षिणपन्थ के तमाम रूपों का मुक़ाबला करने की ताक़त सुधारवादी या संशोधनवादी राजनीति में कभी थी ही नहीं। आज यह राजनीति पूरे तरीक़े से पूँजीपति वर्ग की गोद में जाकर बैठ चुकी है। और इनसे किसी भी प्रकार की उम्मीद करना शेखचिल्ली के सपने देखने की तरह होगा। आज मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी ताक़त ही फ़ासीवाद समेत धुर-दक्षिणपन्थ के तमाम रूपों का मुक़ाबला कर सकती है। मज़दूर वर्ग के सबसे ख़तरनाक दुश्मन फासीवाद और धुर-दक्षिणपन्थ के अन्य रूपों का मुक़ाबला करने के लिए आज ब्राज़ील के मज़दूर वर्ग को अपनी माँगों के आधार पर संगठित होना होगा, उन्हें ज़मीनी स्तर पर क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू कर फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ अपना मोर्चा खोलना होगा। साथ ही लूला जैसी तमाम पार्टियों की सुधारवादी राजनीति को सिरे से ख़ारिज करना होगा और अपना स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पक्ष खड़ा करना होगा।

फ़ॉक्सकॉन की फ़ैक्ट्री में मज़दूरों के आन्दोलन का दमन : संक्षिप्त रिपोर्ट

● विवेक

वर्तमान चीन जहाँ नाम के लिए समाजवादी व्यवस्था स्थापित है, या फिर मज़दूर वर्ग के ग़द्दार देङ शियाओ पिङ के शब्दों में 'बाज़ार समाजवाद' स्थापित है, वह चीन आज दुनियाभर में श्रम के पूँजी द्वारा शोषण की सबसे बड़ी मण्डी बन चुका है। इस माह के मध्य में अन्तर्राष्ट्रीय समाचारपत्रों व अन्य माध्यमों से कुछ तस्वीरें सामने आयीं, जिसमे हैज़मेट सूट पहने और हाथों में बैट लिये सुरक्षाकर्मी, प्रदर्शन कर रहे मज़दूरों का दमन कर रहे हैं। 'द गार्जियन' में 23 नवम्बर को छपी ख़बर के अनुसार चीन के झेंगझू शहर में कुछ दिनों से फ़ॉक्सकॉन कम्पनी में काम करने वाले मज़दूर प्रदर्शनरत हैं। यह तो जगज़ाहिर है कि एप्पल कम्पनी के आईफ़ोन चीन में फ़ॉक्सकॉन द्वारा झेंगझू शहर में एक विशाल फ़ैक्ट्री में बनाये जाते है। इस कम्पनी में फ़िलहाल दो लाख से ज़्यादा कर्मचारी हैं। यहाँ क्लोज़्ड लूप सिस्टम लागू है, जिसके तहत मज़दूरों को फ़ॉक्सकॉन की फ़ैक्ट्री में ही रहना और काम करना होता है, वे बाहर नहीं जा सकते हैं। इस माह के मध्य में फ़ैक्ट्री में कोरोना संक्रमण के कुछ केस मिले थे, जिसके बाद फ़ैक्ट्री को सील कर दिया गया जिससे कि यह संक्रमण शहर में न फैले। लेकिन इसके बाद भी फ़ैक्ट्री में उत्पादन बन्द नहीं किया गया है।

यह ख़बर आ रही है कि संक्रमित मज़दूरों के साथ ही अन्य मज़दूरों को रहना पड़ रहा है। न तो खाने की उचित व्यवस्था है और न ही रहने की। कई मज़दूरों को उनका पिछला बकाया पैसा भी नहीं दिया गया है। यह जानते हुए भी कोरोना संक्रमण का खतरा अभी भी मौजूद है, फ़ॉक्सकॉन द्वारा ज़रूरी एहतियाती क़दम नहीं उठाये गये और उसके साथ ही बड़े पैमाने पर फ़ैक्ट्री में मज़दूरों की बहाली की गयी। अब जब फ़ैक्ट्री में कोरोना संक्रमण के कारण स्थिति बिगड़ रही है तो मज़दूरों को प्लाण्ट से बाहर भी नहीं जाने दिया जा रहा है। इसे पूँजी की क्रूरता न कहा जाये तो क्या कहा कहा जाये? जब पिछले दिनों फ़ॉक्सकॉन के मज़दूरों ने फ़ैक्ट्री प्रबन्धन की तानाशाही के ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया, तो फ़ॉक्सकॉन ने इस प्रदर्शन का दमन करने के लिए हैज़मेट सूट पहने सुरक्षाकर्मियों के दस्ते भेजे।

जब इस घटना से जुड़ी तस्वीरें और ख़बरें वहाँ की एक सोशल मीडिया साइट पर सामने आयीं तो फ़ॉक्सकॉन के दबाव में आनन-फानन में इसे हटा लिया गया है। वहीं एप्पल कम्पनी ने भी इस पूरे घटनाक्रम अभी तक कोई सफ़ाई नहीं दी है।

एक बार इस पर भी सोचने की ज़रूरत है कि आख़िर चीन में पूँजी की शक्तियों को श्रम की ऐसी बर्बर लूट की खुली छूट कैसे मिली हुई है? दरअसल चीन एक पूँजीवादी राज्य ही है लेकिन एक संशोधनवादी पार्टी द्वारा शासित पूँजीवादी राज्य है जिसका चरित्र सामाजिक फ़ासीवादी है। यह इसे दूसरे पूँजीवादी देशों से कुछ मायनों में अलग करता है। सामान्य तौर पर, सभी बुर्जुआ राज्यों की पूँजीपति वर्ग से सापेक्षिक स्वायत्तता होती है। परन्तु, चीन जैसे राज्य में यह सापेक्षिक स्वायत्तता और भी ज़्यादा है। इससे वहाँ की सामाजिक फ़ासीवादी राज्यसत्ता श्रम पर नियंत्रण के साथ-साथ पूँजी को भी अधिक कुशलता से अनुशासित करती है। पूँजी के हितों के अनुसार, ज़रूरत पड़ने पर वह बड़ी सफ़ाई से ऐसी क्रूरताओं को अंजाम देने की मंज़ूरी देती है और कई बार ख़ुद भी ऐसे बर्बर दमन में सीधे तौर पर शामिल होती है और बड़े पैमाने पर अन्तरराष्ट्रीय व्यापार सन्धियों को बढ़ावा देकर, अपने श्रम बाज़ार को दुनिया भर के पूँजीपतियों के लिए लूटने के लिए खोल देती है।

इस पूरे घटनाक्रम से यह स्पष्ट पता चलता है, कि भले ही साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच आपसी अन्तरविरोध हो, पर वास्तव में ये अन्तरविरोध मित्रतापूर्ण ही होते हैं, जब बात श्रमिकों के शोषण की आती है, तो इनके आपसी विरोध नेपथ्य में चले जाते हैं।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 7

मूल्य के श्रम सिद्धान्त का विकास: एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो और मार्क्स – 2 (डेविड रिकार्डो)

● अभिनव

अब तक हमने क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ के महत्वपूर्ण योगदानों और कमियों को देखा। हमने देखा कि किस प्रकार एक ओर एडम स्मिथ ने मूल्य का श्रम सिद्धान्त दिया और बताया कि हर माल का मूल्य उसमें लगे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रम की मात्रा से तय होता है। दूसरे शब्दों में, हर माल का मूल्य उसमें लगे उत्पादन के साधनों के उत्पादन में ख़र्च हुए श्रम की मात्रा और स्वयं उस माल के उत्पादन में प्रत्यक्ष तौर पर लगे श्रम की मात्रा के योग से तय होता है। इस खोज को एडम स्मिथ के योग्य उत्तराधिकारी डेविड रिकार्डो ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के सबसे अहम सिद्धान्तों में गिना। लेकिन एडम स्मिथ अपने इस सिद्धान्त को साधारण माल उत्पादन पर ही सुसंगत रूप में लागू कर सके, यानी माल उत्पादन के उस दौर पर जब अभी उत्पादन के साधनों का स्वामी स्वयं प्रत्यक्ष उत्पादक ही है; यानी, जब तक पूँजीवादी माल उत्पादन का दौर शुरू नहीं हुआ था।

पूँजीवादी माल उत्पादन में उत्पादन के साधनों का स्वामी पूँजीपति बन जाता है (जिसके पीछे एक ज़ोर-ज़बर्दस्ती और हिंसा की ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिसे आदिम पूँजी संचय के नाम से जाना जाता है) जबकि प्रत्यक्ष उत्पादक से उत्पादन के साधन छीन लिये जाते हैं और वह अपनी श्रमशक्ति को बेचने को बाध्य एक उजरती मज़दूर में तब्दील हो जाता है। पहले प्रत्यक्ष उत्पादक के श्रम से पैदा होने वाला नया मूल्य पूरी तरह प्रत्यक्ष उत्पादक के हिस्से जाता था। तब तक एडम स्मिथ के समक्ष सापेक्षिक दाम या विनिमय मूल्य तय करने में कोई समस्या या बाधा नहीं थी। लेकिन अब यह नया मूल्य दो हिस्सों में विभाजित होता है: मज़दूरी और मुनाफ़ा। ऐसे में, एडम स्मिथ के समक्ष दो समस्याएँ उपस्थित हुईं: पहला, मज़दूर और पूँजीपति के बीच विनिमय को विनिमय की समानता के सिद्धान्त के ज़रिए व्याख्यायित करना स्मिथ के लिए मुश्किल हो गया। क्योंकि मज़दूर का प्रत्यक्ष श्रम जितना नया मूल्य पैदा कर रहा था वह पूरा मज़दूर को नहीं मिल रहा था, बल्कि उसका एक हिस्सा मुनाफ़े के तौर पर पूँजीपति के पास जा रहा था और इसलिए मज़दूर और पूँजीपति के बीच के विनिमय को विनिमय की समतुल्यता के सिद्धान्त के ज़रिए व्याख्यायित नहीं किया जा सकता था। दूसरा, यदि हर पूँजीवादी उत्पादक के उद्यम में नये उत्पादित मूल्य का मज़दूरी और मुनाफ़े में समान अनुपात में बँटवारा नहीं होता और यदि हर उद्यम में पूँजी और श्रम का अनुपात समान नहीं है, तो फिर माल के मूल्य और माल के दाम में अन्तर आ जाता है और स्मिथ इस अन्तर को अपने मूल्य के श्रम के सिद्धान्त से व्याख्यायित नहीं कर पाते हैं। एक मिसाल से हम इस बात को समझते हैं।

स्मिथ इस सच्चाई को समझते हैं कि साधारण माल उत्पादन के युग में भी अलग-अलग सेक्टरों में प्रति घण्टा श्रम पर होने वाली आमदनी का समतुलन हो जाता है क्योंकि यदि पहले सेक्टर में एक घण्टे के श्रम पर साधारण माल उत्पादक को रु. 10 की आमदनी होती है और दूसरे सेक्टर में एक घण्टे के श्रम पर साधारण माल उत्पादक को रु. 12 की आमदनी होती है, तो फिर पहले सेक्टर से कुछ उत्पादक दूसरे सेक्टर में जाएँगे और इस प्रक्रिया के कारण दूसरे सेक्टर में माँग और आपूर्ति के समीकरण बदलने के कारण मालों की दाम में कुछ गिरावट आयेगी और प्रति घण्टा श्रम पर होने वाली आमदनी में भी कमी आयेगी। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक कि दोनों सेक्टरों में प्रति घण्टा श्रम पर होने वाली आमदनी का समतुलन नहीं हो जाता है। यह प्रक्रिया स्मिथ के अनुसार पूरी अर्थव्यवस्था में चलती है, जिसमें प्रतिस्पर्द्धा मौजूद हो।

इसलिए साधारण माल उत्पादन में हर सेक्टर में माल के सापेक्षिक दाम या विनिमय मूल्य उनमें लगे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष श्रम की मात्रा से तय होगा। स्मिथ के उदाहरण के ही आधार पर हम नीचे तालिका-1 में दिये उदाहरण से इसे समझते हैं :

तालिका - 1

	प्रति घण्टा श्रम से आमदनी	उत्पादन में लगा अप्रत्यक्ष श्रम	उत्पादन में लगा प्रत्यक्ष श्रम	माल का मूल्य
उत्पादक 'क'	रु. 10 प्रति घण्टा	5 घण्टे = रु. 50	10 घण्टे = रु. 100	रु. 150
उत्पादक 'ख'	रु. 10 प्रति घण्टा	10 घण्टे = रु. 100	20 घण्टे = रु. 200	रु. 300

जब तक प्रत्यक्ष उत्पादक ही उत्पादन के साधनों का स्वामी है (जिसे वह उत्पादन के साधनों का उत्पादन करने वाले माल उत्पादक से उपरोक्त नियमों से निर्धारित होने वाली सापेक्षिक दाम पर ही ख़रीदता है) तब तक मालों के मूल्य के श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारण में स्मिथ का मूल्य का श्रम सिद्धान्त पूरी तरह से सक्षम है। लेकिन अब हम उस स्थिति की कल्पना करते हैं, जिसमें कि पूँजीवादी माल उत्पादन की शुरुआत हो चुकी है, प्रत्यक्ष उत्पादक को उत्पादन के साधनों से वंचित किया जा चुका है और वह श्रमशक्ति को बेचने वाला उजरती मज़दूर बन चुका है, जबकि पूँजीपति के पास उत्पादन के साधनों का मालिकाना आ चुका है। अब उत्पादन के साधनों का दाम तो पहले के ही समान माल के मूल्य में स्थानान्तरित हो जाता है, लेकिन अब प्रत्यक्ष श्रम के हर घण्टे से होने वाली आय या उससे पैदा होने वाला मूल्य अब पूँजीपति और उजरती मज़दूर में मुनाफ़े और मज़दूरी के रूप में विभाजित हो जाता है। जाहिर है, समूची अर्थव्यवस्था में अलग-अलग पूँजीवादी माल उत्पादकों द्वारा उत्पादन के साधनों पर हुआ ख़र्च और श्रमशक्ति ख़रीदने पर हुआ ख़र्च समान अनुपात में नहीं होता है। ऐसे में, मसले को गहराई से समझने के लिए एक दूसरे उदाहरण पर ग़ौर करते हैं। स्मिथ के अनुसार हम मान लेते हैं कि प्रत्यक्ष श्रम से पैदा हुआ मूल्य दोनों ही पूँजीपतियों के मामले में बराबर अनुपात में विभाजित होता है। हम यह भी मान लेते हैं कि उत्पादन के एक चक्र में ही उत्पादन के साधन पूर्णत: ख़र्च हो जाते हैं। ऐसे में स्थिति कुछ ऐसी होगी जैसी तालिका-2 में दिखायी गयी है:

तालिका - 2

	उत्पादन के साधनों पर हुआ पूँजी निवेश या उनके उत्पादन में लगे श्रम की मात्रा/ अप्रत्यक्ष श्रम	माल के उत्पादन में लगा प्रत्यक्ष श्रम	मज़दूरी	मुनाफ़ा	सापेक्षिक दाम (प्रत्यक्ष श्रम व अप्रत्यक्ष श्रम की मात्रा)
पूँजीपति 'क'	10 घण्टे = रु. 100	20 घण्टे = रु. 200	रु. 100	रु. 100	रु. 300
पूँजीपति 'ख'	20 घण्टे = रु. 200	30 घण्टे = रु. 300	रु. 150	रु. 150	रु. 500

यहाँ नये मूल्य के दोनों ही पूँजीपतियों के मामले में मुनाफ़े और मज़दूरी में समान अनुपात में विभाजित होने के बावजूद दोनों पूँजीपतियों के लिए मुनाफ़े की दर अलग है। इसका कारण यह है कि बेशी मूल्य की दर (यानी वैयक्तिक पूँजीपति के लिए मुनाफ़े और मज़दूरी का अनुपात) समान होने के बावजूद, दोनों का उत्पादन के साधनों पर निवेश और मज़दूरी पर निवेश का अनुपात, यानी पूँजी और श्रम का अनुपात अलग-अलग है और मुनाफ़े की दर मुनाफ़े और कुल पूँजी निवेश का अनुपात होता है। ऐसे में, दोनों पूँजीपतियों के लिए बेशी मूल्य की दर समान होने के बावजूद मुनाफ़े की दर अलग-अलग होगी। लेकिन यदि दो सेक्टरों में पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर में अन्तर है तो क्या पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में यह स्थिति बनी रह सकती है? नहीं। ऐसे में, प्रतिस्पर्द्धा के कारण जिस सेक्टर में मुनाफ़े की दर कम है, उससे अधिक मुनाफ़े की दर वाले सेक्टर में पूँजी का प्रवाह होगा जो कि अधिक मुनाफ़े की दर वाले सेक्टर में आपूर्ति को बढ़ायेगा, दाम को नीचे लायेगा जबकि कम मुनाफ़े की दर वाले सेक्टर में आपूर्ति घटेगी और दाम बढ़ेगा। इस प्रक्रिया में दोनों सेक्टरों में मुनाफ़े की दर का समतुलन एक प्रक्रिया के रूप में घटित होगा। हर पूँजीपति कम-से-कम अर्थव्यवस्था की औसत मुनाफ़े की दर प्राप्त करने पर ही सन्तोष करेगा। यहाँ पर औसत मुनाफ़े की दर क्या है?

अर्थव्यवस्था की औसत मुनाफ़े की दर = कुल मुनाफ़ा/कुल निवेश
= (250/550) x 100
= 45.45 प्रतिशत

पहले पूँजीपति के लिए मुनाफ़े की दर
= मुनाफ़ा / कुल निवेश x 100
= (100 / 200) x 100
= 50 प्रतिशत

दूसरे पूँजीपति के लिए मुनाफ़े की दर
= मुनाफ़ा / कुल निवेश x 100
= (150 / 350) x 100
= 43.16 प्रतिशत

यदि हर पूँजीपति को मिलने वाला मुनाफ़ा एक सतत् जारी प्रक्रिया के रूप में और एक रुझान के तौर पर औसत मुनाफ़े के क़रीब जायेगा, तो उसके माल की कीमत होगी: 'उत्पादन के साधनों का दाम + मज़दूरी + औसत मुनाफ़ा'।

लेकिन उस सूरत में हर माल का सापेक्षिक दाम उसके श्रम-मूल्य से विचलन करेगा। एडम स्मिथ का मूल्य का श्रम सिद्धान्त इस परिघटना की व्याख्या नहीं कर पाता है। जब एडम स्मिथ इस परिघटना की व्याख्या नहीं कर पाते, तो वह अपने मूल्य के श्रम सिद्धान्त का ही परित्याग कर देते हैं और मूल्य की उत्पादन-लागत सिद्धान्त पर आ जाते हैं, जिसका हमने पहले भी ज़िक्र किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार, मज़दूरी की एक नैसर्गिक दर होती है और मुनाफ़े की भी एक नैसर्गिक दर होती है। इन दरों के अनुसार, स्मिथ मज़दूरी और मुनाफ़े का आकलन करते हैं और उत्पादन के साधनों पर हुए निवेश में उसे जोड़कर माल की कीमत निकाल लेते हैं और इस प्रकार माल के सापेक्षिक दाम की गणना उसमें लगे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रम की मात्रा से करने के अपने सिद्धान्त का परित्याग कर देते हैं। लेकिन हम सभी जानते हैं कि मज़दूरी और मुनाफ़े की ऐसी नैसर्गिक दर की कल्पना कर लेना वास्तव में उस चीज़ की कल्पना कर लेने की समान है, जिसकी व्याख्या करने की उम्मीद राजनीतिक अर्थशास्त्र से की गयी थी। इसकी वजह यह है कि स्मिथ न तो मज़दूर और पूँजीपति के बीच होने वाले विनिमय को समझ पाते हैं और न ही पूँजीवादी माल उत्पादन में होने वाली प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप पैदा होने वाली उत्पादन के दाम (prices of production) को सुसंगत रूप में समझ पाते हैं। नतीजतन, अन्तरविरोधों में घिरकर वे अपने वैज्ञानिक मूल्य के श्रम सिद्धान्त का परित्याग कर देते हैं। वह मूल्य के श्रम सिद्धान्त की रक्षा के लिए बस दो शर्तें रख देते हैं जो किसी भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कभी पूरी नहीं होती और न ही हो सकती है: पहली शर्त, हर उद्यम में नया मूल्य समान अनुपात में मज़दूरी और मुनाफ़े में विभाजित हो और दूसरी शर्त, हर उद्यम में पूँजी और श्रम का अनुपात समान हो। यदि ये दो शर्तें पूरी नहीं होतीं, तो स्मिथ मूल्य के उत्पादन-लागत सिद्धान्त पर चले जाते हैं।

रिकार्डो स्मिथ की इस दुविधा को दूर करते हैं। रिकार्डो जो सबसे पहली महत्वपूर्ण बात कहते हैं वह यह है कि पूँजीवादी माल उत्पादन मूल्य के श्रम सिद्धान्त को ख़ारिज नहीं करता बल्कि उसे परिवर्धित करता है। मूल्य का श्रम सिद्धान्त पूँजीवादी माल उत्पादन की स्थितियों में भी सही है और वही मालों के सापेक्षिक दाम की सही तरीक़े से व्याख्या कर सकता है। इसे सिद्ध करने के लिए पहले रिकार्डो स्मिथ का ही उदाहरण लेते हैं और कहते हैं कि हम माल उत्पादन की एक 'आदिम अवस्था' की कल्पना करते हैं, जिसे हमने ऊपर तालिका 1 में चित्रित किया है। उसके बाद, रिकार्डो उसमें पूँजीवादी माल उत्पादन की एक ऐसी स्थिति को जोड़ते हैं जिसमें कि स्मिथ द्वारा बतायीं गयीं दोनों शर्तें, यानी नये

(पेज 14 पर जारी)

मूल्य के श्रम सिद्धान्त का विकास: एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो और मार्क्स – 2
(डेविड रिकार्डो)

(पेज 13 से आगे)

मूल्य का मुनाफ़े और मज़दूरी में समान अनुपात में बँटवारा होना और सभी पूँजीवादी उद्यमों में पूँजी व श्रम का समान अनुपात होना, पूरी हो रही हैं। वह स्थिति कैसी होगी? नीचे दी गयी तालिका-3 से समझें :

तालिका - 3

	अप्रत्यक्ष श्रम या उत्पादन के साधनों पर लगा श्रम	प्रति घण्टा श्रम पर होने वाली आय	मज़दूरी/ घण्टा	मुनाफ़ा/ घण्टा	निवेशित पूँजी का व्यय/घण्टा	मुनाफ़े की दर	प्रति घण्टा पैदा माल का श्रम मूल्य	माल का दाम
पूँजीपति 'क'	20 घण्टे	रु. 10	रु. 4	रु. 6	रु. 60	10 प्रतिशत	रु. 66	रु. 66
पूँजीपति 'ख'	10 घण्टे	रु. 10	रु. 4	रु. 6	रु. 60	10 प्रतिशत	रु. 66	रु. 66

जैसा कि हम ऊपर के उदाहरण में देख सकते हैं, अब एक घण्टे का श्रम जो रु. 10 की आमदनी देता है, वह मुनाफ़े और मज़दूरी में विभाजित हो रहा है। अब एक घण्टे के श्रम के बदले मज़दूर को रु. 4 मज़दूरी मिलती है, जबकि बाक़ी के रु. 6 पूँजीपति के पास मुनाफ़े के रूप में चले जाते हैं। साथ ही, एक घण्टे में दोनों पूँजीपतियों के उपक्रमों में रु. 60 के बराबर के उत्पादन के साधन ख़र्च होते हैं। यानी प्रति घण्टा पैदा होने वाला माल का मूल्य है: 'प्रति घण्टा पूँजी व्यय + प्रति घण्टा मुनाफ़ा' जो कि उपरोक्त दोनों पूँजीपतियों के मामले में रु. 60 + रु. 6, यानी रु. 66। ध्यान रहे, निवेशित पूँजी में मज़दूरी शामिल है, जो पूँजीपति अपनी पूँजी के एक हिस्से से मज़दूरों को देता है। मुनाफ़े की दर है : प्रति घण्टा मुनाफ़ा/प्रति घण्टा पूँजी व्यय। इस मामले में मुनाफ़े की दर = रु. 6/रु. 60 यानी 10 प्रतिशत। यानी, दोनों ही पूँजीपतियों के उद्यमों में पूँजी-श्रम का अनुपात समान है और नये मूल्य का मुनाफ़े और मज़दूरी में विभाजन का अनुपात समान है। इसलिए दोनों के लिए मूल्य और दाम में अन्तर नहीं है।

अब दूसरा मामला लेते हैं। यहाँ पूँजी और श्रम का अनुपात अलग है। लेकिन हमें यह मानकर चलना होगा कि दोनों के लिए मुनाफ़े की दर समान है, क्योंकि यदि यह असमान होगी तो पूँजी का कम मुनाफ़े की दर वाले सेक्टर से ज़्यादा मुनाफ़े की दर वाले सेक्टर में तब तक प्रवाह होगा जब तक एक प्रक्रिया के रूप में मुनाफ़े की दर का समतुलन न हो। जाहिर है, रिकार्डो भी जानते थे कि वास्तव में किसी भी दिये गये क्षण में सभी पूँजीपतियों को औसत मुनाफ़ा नहीं मिलता है और मुनाफ़े का औसतीकरण एक सतत् जारी प्रक्रिया के रूप में ही मौजूद होता है। लेकिन इस आर्थिक गति को समझने और मूल्य और दाम में अन्तर पैदा होने की परिघटना को समझने के लिए हमें दोनों पूँजीपतियों के लिए श्रम और पूँजी के अनुपात को अलग लेकिन मुनाफ़े की दर को लगभग समान मानना होगा और यही किसी परिघटना को समझने का वैज्ञानिक तरीका भी होता है। आइए देखते हैं कि इस सूरत में क्या होगा।

नीचे दी गयी तालिका-4 को समझने की युक्ति यह है कि आप पहले इसे सातवें कॉलम से पहले कॉलम की ओर पढ़ें, क्योंकि सबसे पहले हमें दोनों पूँजीपतियों के लिए मुनाफ़े की दर को समान मानना होगा। और उसके बाद दोबारा तालिका-4 को पहले कॉलम से नौवें कॉलम तक पढ़ें।

तालिका - 4

	अप्रत्यक्ष श्रम या उत्पादन के साधनों पर लगा श्रम	प्रति घण्टा श्रम पर होने वाली आय	मज़दूरी/ घण्टा	मुनाफ़ा/ घण्टा	निवेशित पूँजी का व्यय/घण्टा	मुनाफ़े की दर	प्रति घण्टा पैदा माल का श्रम मूल्य	माल का दाम
पूँजीपति 'क'	20 घण्टे	रु. 7	रु. 4	रु. 3	रु. 30	10 प्रतिशत	रु. 36	रु. 33
पूँजीपति 'ख'	10 घण्टे	रु. 13	रु. 4	रु. 9	रु. 90	10 प्रतिशत	रु. 96	रु. 99

यहाँ हम देख सकते हैं कि दोनों पूँजीपतियों के उद्यमों में श्रम और पूँजी का अनुपात समान नहीं है क्योंकि एक घण्टे के श्रम में पहले पूँजीपति के उद्यम में रु. 30 का पूँजी व्यय हो रहा है, जबकि दूसरे पूँजीपति के उद्यम में यह व्यय रु. 90 है। लेकिन प्रतियोगिता के कारण मुनाफ़े का औसतीकरण होता है और इसलिए दोनों के लिए मुनाफ़े की दर समान मानी गयी है। ऐसे में, पहले पूँजीपति के उपक्रम में प्रति घण्टा 3 रु. का मुनाफ़ा हो रहा है क्योंकि प्रति घण्टा पूँजी व्यय रु. 30 है जबकि मुनाफ़े की दर 10 प्रतिशत है। दूसरे पूँजीपति के उपक्रम में प्रति घण्टा 9 रु. का मुनाफ़ा हो रहा है क्योंकि प्रति घण्टा पूँजी व्यय रु. 90 है जबकि उसके लिए भी मुनाफ़े की दर 10 प्रतिशत है। चूँकि प्रति घण्टा पैदा होने वाला माल का मूल्य 1 घण्टे में प्रत्यक्ष श्रम द्वारा पैदा नये मूल्य और उत्पादन के साधनों पर एक घण्टे में हुए व्यय (जो यहाँ कुल पूँजी व्यय और भुगतान की गयी मज़दूरी के अन्तर के बराबर, यानी रु. 26 है) के बराबर है इसलिए पहले पूँजीपति के लिए हर घण्टे पैदा होने वाला माल का मूल्य है रु. 10 + रु. 26 = रु. 36 जबकि उसके लिए दाम है रु. 3 (औसत मुनाफ़ा) + रु. 33 (कुल पूँजी व्यय)। इसी प्रकार, दूसरे पूँजीपति के लिए मूल्य सृजन/घण्टा है रु. 96 और दाम है रु. 99। दोनों पूँजीपतियों के उपक्रमों में जीवित/प्रत्यक्ष श्रम द्वारा हर घण्टे पैदा होने वाला मूल्य रु. 10 ही है क्योंकि एक घण्टे का श्रम रु. 10 का मूल्य ही पैदा कर रहा है। दोनों उपक्रमों में प्रत्यक्ष श्रम द्वारा हर घण्टे कुल मिलाकर अभी भी उतना ही नया मूल्य (रु. 20) पैदा हो रहा है जितना पहले, यानी तालिका 3 में, हो रहा था। दोनों उपक्रमों में कुल मुनाफ़ा भी अभी उतना ही है (कुल रु. 12) जितना कि पहले, यानी तालिका 3 में, पैदा हो रहा था, लेकिन यह नया मूल्य और मुनाफ़ा अब दोनों पूँजीपतियों के बीच अलग रूप में पुनर्वितरित हो रहा है। इसकी वजह यह है कि दोनों उपक्रमों में पूँजी व श्रम के बीच का अनुपात अलग-अलग है और इसकी वजह से दोनों में मुनाफ़े की दर अलग-अलग हैं, लेकिन चूँकि हर पूँजीपति अपनी पूँजी के आकार के अनुसार कम-से-कम औसत मुनाफ़ा हासिल करने की अपेक्षा रखते हैं और ऐसा न होने पर पूँजी का कम मुनाफ़े की दर वाले सेक्टरों से अधिक मुनाफ़े की दरों वाले सेक्टरों की ओर प्रवाह होता है, इसलिए एक प्रवृत्ति के तौर पर औसत मुनाफ़ा की दर का सृजन होता है।

रिकार्डो का योगदान यह था कि उन्होंने बताया कि माल के मूल्य और माल के दाम के बीच जो अन्तर पैदा होता है, वह कभी भी 7 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं हो सकता। इसे 'रिकार्डो के 7 प्रतिशत के नियम' के नाम से भी जाना जाता है। जैसे ही यह अन्तर 7 प्रतिशत से अधिक होता है, वैसे ही एक उल्टी प्रक्रिया शुरू होती है जो कि मूल्य और दाम के बीच के अन्तर को विपरीत दिशा में मोड़ देते हैं। इसलिए रिकार्डो कहते हैं कि एक प्रक्रिया के तौर पर देखें तो दाम के लिए श्रम की मात्रा से पैदा होने वाला मूल्य एक गुरुत्व केन्द्र या गुरुत्वाकर्षण के तौर पर काम करता है और दाम श्रम-मूल्य के इसी गुरुत्व केन्द्र के इर्द-गिर्द मण्डराते रहते हैं। इसलिए अगर हम साधारण माल उत्पादन के बजाय पूँजीवादी माल उत्पादन का भी विश्लेषण करें, तो वह मूल्य के श्रम सिद्धान्त को ख़ारिज नहीं करता है, बल्कि केवल उसे परिवर्धित करता है, या उसमें एक परिवर्तन लाता है। अभी भी मालों का सापेक्षिक दाम इस 7 प्रतिशत के अधिकतम अन्तर के साथ उनके श्रम-मूल्य के गुरुत्व केन्द्र के इर्द-गिर्द ही मण्डराता है और उनकी व्याख्या करने के लिए हमें मालों के सापेक्षिक दाम के उत्पादन-लागत सिद्धान्त पर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, जैसा कि स्मिथ ने किया और जो उनके सिद्धान्तों का वह हिस्सा है जिसे मार्क्स ने अवैज्ञानिक कहा था।

इस प्रकार रिकार्डो एडम स्मिथ से एक क़दम आगे जाते हैं और एडम स्मिथ के मूल्य के श्रम सिद्धान्त को एडम स्मिथ के ही अन्तरविरोधों से बचाते हैं और दिखलाते हैं कि यह पूँजीवादी माल उत्पादन के युग में भी बिना किसी शर्त पूर्णत: वैध है। बाद में, आनुभविक अध्ययनों ने इस बात को सही सिद्ध किया कि पूँजीवादी माल उत्पादन, पूँजीपति, निजी स्वामित्व व मुनाफ़े की श्रेणी के आने से मूल्य के श्रम सिद्धान्त का परित्याग करने की कोई आवश्यकता नहीं है, बस उसे परिवर्धित करने की आवश्यकता है। पूँजीवादी माल उत्पादन मूल्य के श्रम सिद्धान्त को ख़ारिज नहीं करता है, बल्कि उसे परिवर्धित रूप में पुष्ट ही करता है।

लेकिन स्मिथ के समान ही रिकार्डो भी यह नहीं समझ पाये कि पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के मूल इस बात में निहित है कि मज़दूर की श्रमशक्ति स्वयं एक माल बन जाती है। पूँजीपति और मज़दूर के बीच विनिमय श्रम और मज़दूरी का नहीं बल्कि श्रमशक्ति और मज़दूरी का होता है और यह श्रमशक्ति अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में अपने मूल्य से अधिक मूल्य सृजित करने की क्षमता रखने वाला एक विशिष्ट माल है। इसलिए बेशी मूल्य के सिद्धान्त तक सिमथ और रिकार्डो या मार्क्स के पहले का कोई भी राजनीतिक अर्थशास्त्री नहीं पहुँच पाया। साथ ही, मार्क्स से पहले का क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र मूर्त व अमूर्त श्रम के बीच के अन्तर तथा मज़दूरी पर लगने वाली परिवर्तनशील पूँजी (variable capital) और एक बार में माल अपना मूल्य स्थानान्तरित करने वाले उत्पादन के कारकों पर लगने वाली चल पूँजी (circulating capital) के बीच के अन्तर को भी स्पष्ट तौर पर नहीं समझ पाया था।

इसके अतिरिक्त, स्मिथ और रिकार्डो भू-लगान व अन्तरराष्ट्रीय व्यापार तथा मुद्रा के विषय में भी जो सिद्धान्त देते हैं वे अधूरे, त्रुटिपूर्ण और कई भ्रमों का शिकार हैं, जिनकी आलोचना पेश करते हुए मार्क्स ने भू-लगान, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार व मुद्रा के वैज्ञानिक सिद्धान्त पेश किये। लेकिन उन पर हम आगे के अध्यायों में विचार करेंगे। अभी हमारा मक़सद सिर्फ़ संक्षेप में यह दिखलाना था कि मार्क्स से पहले क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र द्वारा मूल्य के श्रम सिद्धान्त का किस प्रकार विकास हुआ था और मार्क्स ने किस प्रकार उसकी कमियों को दूर करते हुए बेशी मूल्य का सिद्धान्त विकसित किया, पूँजीवादी समाज में मज़दूर वर्ग के शोषण को सम्पूर्णता में और वैज्ञानिक तौर पर समझा।

कम्युनिज़्म हमारे लिए कोई ऐसी स्थिति नहीं है जिसे स्थापित किया जाना है, कोई ऐसा आदर्श नहीं है जिसके साथ यथार्थ को स्वयं को समायोजित करना है। हम कम्युनिज़्म को वह वास्तविक आन्दोलन कहते हैं जो वस्तुओं की मौजूदा अवस्था को ख़त्म कर देता है। इस आन्दोलन की परिस्थितियाँ इस समय अस्तित्वमान स्थितियों से ही उत्पन्न होती हैं।

...

इस कम्युनिस्ट चेतना के बड़े पैमाने पर उत्पादन, और...बड़े पैमाने पर मनुष्यों के रूपान्तरण दोनों के लिए, ...क्रान्ति आवश्यक है; और इसी वजह से लिए, यह क्रान्ति महज़ इसलिए आवश्यक नहीं है क्योंकि शासक वर्ग को किसी अन्य तरीक़े से उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि उसे उखाड़ फेंकने वाला वर्ग केवल क्रान्ति में ही अपने आप को सदियों की तमाम गन्दगी से मुक्त कर सकता है और नये समाज की नींव रखने के लिए तैयार हो सकता है।

– कार्ल मार्क्स, 'जर्मन विचारधारा' (1845)

फ़ॉक्सकॉन के मज़दूर की कविताएँ

ये कवितायें चीन की फ़ॉक्सकॉन कम्पनी में काम करने वाले एक प्रवासी मज़दूर ज़ू लिझी ने लिखी हैं। लिझी ने 30 सितम्बर 2014 को आत्महत्या कर ली थी। लिझी की कविताओं के बिम्ब उस नारकीय जीवन और उस अलगाव का खाका खींचते है जो यह मुनाफ़ाख़ोर मज़दूरों पर व्यवस्था थोपती है और इंसान को अन्दर से खोखला कर देती है।

1.
मैंने लोहे का चाँद निगला है
वो उसको कील कहते हैं
मैंने इस औद्योगिक कचरे को, बेरोज़गारी के दस्तावेज़ों को निगला है,
मशीनों पर झुका युवा जीवन अपने समय से पहले ही दम तोड़ देता है,
मैंने भीड़, शोरशराबे और बेबसी को निगला है।
मैं निगल चुका हूँ पैदल चलने वाले पुल, ज़ंग लगी ज़िन्दगी,
अब और नहीं निगल सकता
जो भी मैं निगल चुका हूँ वो अब मेरे गले से निकलकर
मेरे पूर्वजों की धरती पर फैल रहा है
एक अपमानजनक कविता के रूप में।

2.
एक पेंच गिरता है ज़मीन पर
ओवरटाइम की इस रात में
सीधा ज़मीन की ओर, रोशनी छिटकाता
यह किसी का ध्यान आकर्षित नहीं करेगा
ठीक पिछली बार की तरह
जब ऐसी ही एक रात में
एक आदमी गिरा था ज़मीन पर

3.
मैं लोहे-सी सख़्त असेम्बली लाइन के पास खड़ा रहता हूँ
मेरे दोनों हाथ हवा में उड़ते हैं
कितने दिन और कितनी रातें
मैं ऐसे ही वहाँ खडा रहता हूँ
नींद से लड़ता।

4.
मशीन भी झपकी ले रही है
सीलबन्द कारख़ानों में भरा हुआ है बीमार लोहा
तनख़्वाहें छिपी हुई हैं पर्दों के पीछे
उसी तरह जैसे जवान मज़दूर अपने प्यार को
दफ़न कर देते है अपने दिल में,
अभिव्यक्ति के समय के बिना
भावनाएँ धूल में तब्दील हो जाती हैं
उनके पेट लोहे के बने हैं
सल्फ़्यूरिक, नाइट्रिक एसिड जैसे गाढ़े तेज़ाब से भरे
इससे पहले कि उनके आँसुओं को गिरने का मौका मिले
ये उद्योग उन्हें निगल जाता है
समय बहता रहता है, उनके सिर धुन्ध में खो जाते हैं
उत्पादन उनकी उम्र खा जाता है
दर्द दिन और रात ओवरटाइम करता है
उनके वक़्त से पहले एक साँचा उनके शरीर से
चमड़ी अलग कर देता है
और एल्युमिनियम की एक परत चढ़ा देता हैं
इसके बावजूद कुछ बच जाते है और बाकी
बीमारियों की भेंट चढ़ जाते हैं
मैं इस सबके बीच ऊँघता पहरेदारी कर रहा हूँ
अपने यौवन के क़ब्रिस्तान की।

दिल्ली एमसीडी चुनाव में मेहनतकश जनता के समक्ष विकल्प क्या है?

(पेज 11 से आगे)

किया था कि उनके सत्ता में आने के बाद मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी बढ़ायी जायेगी और ठेका प्रथा को ख़त्म कर दिया जायेगा। लेकिन उनके ये सारे वादे जुमले ही साबित हुए। इतना ही नहीं जब यही ठेका मज़दूर केजरीवाल को उनका वायदा याद दिलाने सचिवालय पहुँचे तो उनपर बर्बरता से लाठीचार्ज करवा दिया गया। केजरीवाल सरकार ने यह भी वायदा किया था कि कच्ची कॉलोनियों को बिना शर्त नियमित किया जायेगा व इन कॉलोनियों में बुनियादी सुविधाएँ दी जायेंगी। अब यह सरकार यह काम न करने के बहाने के तौर पर तरह-तरह की शर्तें लगा रही है। ऐसा ही वादा केजरीवाल ने पानी और बिजली को लेकर किया था। दिल्ली सरकार का दावा कि उसने दिल्ली के हर घर को 700 लीटर मुफ़्त पानी दे दिया है, बिल्कुल बेबुनियाद है। सच यह है कि मज़दूरों के रिहायशी इलाक़ों में बड़ी आबादी बाहर गलियों में लगी टोटियों से पानी भरती है। वहीं मुफ़्त बिजली के लिए भी अब सरकार नयी-नयी अड़चनें लगा रही है। सत्ता में आने के पहले इसी सरकार ने 55,000 सरकारी पदों पर भर्ती और 8 लाख नये रोज़गार का वायदा भी किया था। लेकिन सबको पता है कि सरकार द्वारा कितनी नौकरियाँ निकाली गयीं और कितनी भर्तियाँ की गयीं। इसी तरह 500 नये स्कूल खोलने की बात कही थी। पिछले दो सालों में एक भी नया स्कूल नहीं खोला गया। दूसरी तरफ़ इसी पार्टी ने अपने प्रचार के ख़र्च में पिछले दस सालों में 4273% का इज़ाफ़ा किया है और पिछले एक साल में लगभग 500 करोड़ रुपये प्रचार पर ख़र्च किये हैं। इन आँकड़ों से यह साफ़ है कि आम आदमी की पार्टी होने का दावा करने वाली 'आप' सरकार असल में उन छोटे व मँझोले पूँजीपतियों की सरकार है जो इनको सालों लाखों-करोड़ों का चन्दा देते हैं और बदले में ये उनके लिए पूरी बेशर्मी से काम में लगे रहते हैं।

अब बात करते हैं केन्द्र में बैठी भाजपा सरकार की। वैसे तो भाजपा अब इतनी नंगी हो चुकी है कि उसकी सच्चाई बताने की भी ज़रूरत नहीं है। फिर भी हम यहाँ कुछ तथ्यों और आँकड़ों पर नज़र डालेंगे। यह तो साफ़ ही है कि केन्द्र में सत्तासीन यह सरकार बड़े पूँजीपतियों यानी कि अडानी-अम्बानी जैसों की सरकार है। भाजपा के सत्ता में आते ही इनकी सम्पत्ति में दिन दूना रात चौगुना इज़ाफ़ा होने लगा था और आज तो यह दुनिया में सबसे अमीरों की सूची में पहुँच गये हैं। देश में महँगाई और बेरोज़गारी चरम सीमा पर हैं। पेट्रोल-डीज़ल के दाम 100 रुपये तक पहुँच चुके हैं , गैस सिलेण्डर के दाम भी हज़ार को पार कर चुके हैं, आलू-प्याज़, सब्ज़ियों और तेल के दाम तो पहले ही आसमान छू रहे थे। दूसरी तरफ़ सरकारी नौकरियाँ तो निकल नहीं रहीं पर हर सरकारी चीज़ को बेचा ज़रूर जा रहा है और भर्तियाँ ठेके पर ली जा रही हैं। हर तरह की पेंशन स्कीम को धीरे-धीरे ख़त्म किया जा रहा है। लोग इन पर बात नहीं करें इसलिए जाति-धर्म के मुद्दे समय-समय पर उछाले जाते रहते हैं। लव-जिहाद जैसी आधारहीन बातों को हवा दी जाती है। हालिया श्रद्धा-आफ़ताब घटना इसी का उदाहरण है जिसे लव-जिहाद के रूप में लोगों के सामने परोसा जा रहा है जबकि इससे जुड़े असली सवालों को गायब कर दिया जा रहा है। उसी समय जब ऐसी घटना उत्तर प्रदेश में मुसलमान के बजाय एक हिन्दू पति ने की तो उसको मीडिया में कहीं जगह नहीं मिली! कहीं जाति के नाम पर एक बच्चे को पीटकर मार दिया जाता है तो कहीं बलात्कारियों का स्वागत फूल मालाओं के साथ किया जाता है।

दिल्ली में आँगनबाड़ी की हड़ताल के समय भी भाजपा की पोल खुल गयी थी जब उनके राज्यपाल आँगनवाड़ी की महिलाओं से मिलने तक को राज़ी नहीं थे। दिल्ली नगर निगम में तो कई जगह भाजपा के ही मंत्री विराजमान हैं लेकिन उन इलाक़ों में भी न तो सफ़ाई होती है न ही पीने के पानी की सही व्यवस्था है। कुल मिलाकर बात यह है कि भाजपा का पूँजीपति-प्रेम जगज़ाहिर है। अत: यह कभी भी आम अवाम का, मेहनतकश-मज़दूरों का विकल्प हो ही नहीं सकती।

इसके बाद हम कांग्रेस और अन्य पार्टियों की बात करते हैं। वैसे तो कांग्रेस जनता के बीच तो लम्बे समय पहले ही भरोसा खो चुकी थी, पर संकट के दौर में यह पूँजीपतियों के भी उतने काम की नहीं रह गयी है। यही कारण है कि आज कांग्रेस हर जगह मारी-मारी फिर रही है। ऐसे भी दिल्ली की जनता ने कांग्रेस पर तो सालों भरोसा किया, पर बदले में मिली सिर्फ़ बदहाली। आज दिल्ली की इस हालत के लिए कांग्रेस भी उतनी ही ज़िम्मेदार है। यही वह पार्टी है जिसकी सरकारों ने श्रम क़ानूनों में बदलाव, निजीकरण आदि की शुरुआत की थी जिसे भाजपा सरकार तानाशाही तरीक़े से आगे बढ़ा रही है। बाक़ी छोटी पार्टियाँ भी चुनाव के ख़र्चे के लिए पूँजीपति वर्ग के किसी न किसी हिस्से पर निर्भर रहती हैं। इसलिए इनमें से कोई भी बहुसंख्य मेहनतकश आबादी की नुमाइन्दगी कर ही नहीं सकती।

अब जब एमसीडी का चुनाव सर पर है तब सब फिर से झूठ पर झूठ बोले जा रहे हैं। केजरीवाल नारे लगा रहा है कि 'कूड़े का पहाड़ हटाना है, केजरीवाल को जिताना है', तो जनाब पिछले इतने सालों से दिल्ली में आप की ही तो सरकार रही है, तब याद नहीं आया? करावल नगर, मेट्रो विहार से लेकर बवाना तक में मज़दूरों के जो हालात हैं, उसे आज तक क्यों सही नहीं किया गया। पक्का मकान देने की बात करने वाले जाकर देखें कैसे वहाँ के लोग झुग्गियों में खुले नालों के किनारे जीने को मजबूर हैं। दूसरी तरफ़ भाजपा भी यह वायदा कर रही है कि मकान की व्यवस्था सभी के लिए की जायेगी, जबकि भाजपा के नियंत्रण वाली इसी एमसीडी द्वारा जब झुग्गियाँ तोड़ी जा रहीं थीं तो ये चुप बैठे थे। जिनके ख़ुद के उम्मीदवार करोड़पति और अरबपति हों उनसे आम जनता उम्मीद भी कैसे कर सकती है?

विकल्प क्या है?

इसके लिए एकमात्र विकल्प एक ऐसी ही पार्टी हो सकती है जो मेहनतकश-मज़दूरों और इन्साफ़पसन्द लोगों के दम पर चलती हो। एक ऐसी पार्टी जो सर्वहारा वर्ग का नज़रिया पेश करती हो। एक ऐसी पार्टी जो शोषणमुक्त समाज बनाने की बात करती हो, और ऐसे समाज बनाने का रास्ता इन्क़लाब के रास्ते को ही मानती हो। क्योंकि बिना क्रान्तिकारी तरीक़े से आये बदलाव में बस सत्ता परिवर्तन होगा, उससे आम मेहनतकश की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा। एक ऐसी पार्टी जो इस पूँजीवादी चुनाव की प्रक्रिया को मज़दूरों का पक्ष रखने के लिए इस्तेमाल करती हो।

'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)' एक ऐसी ही पार्टी है जो उपरोक्त तमाम क्रान्तिकारी उसूलों को मानती है। RWPI की तरफ़ से इस एमसीडी चुनाव में दो प्रतिनिधि खड़े किये जा रहे हैं। एक करावल नगर से और दूसरा शाहाबाद डेरी से। मज़दूरों और मेहनतकशों के सामने अब उनका अपना ख़ुद का विकल्प है इसलिए अब उन्हें पूँजीपतियों और सरमायेदारों की पार्टियों को वोट देने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि पूँजीवादी चुनाव से मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक कार्यभारों को पूरा नहीं किया जा सकता है। समूची आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में आमूलगामी व क्रान्तिकारी बदलाव के बिना हमें बेरोज़गारी, भूख, महँगाई से स्थायी तौर पर निजात नहीं मिल सकती है। लेकिन पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग का स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष अनुपस्थित रहने के कारण समाज में जारी वर्ग संघर्ष में मज़दूर वर्ग कमज़ोर पड़ता है, वह पूँजीपति वर्ग का पिछलग्गू बनता है और साथ ही वह अपने उन अधिकारों को भी नहीं हासिल कर पाता है जिन्हें सैद्धान्तिक तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर हासिल किया जा सकता है, जैसे कि आठ घण्टे का कार्यदिवस, न्यूनतम मज़दूरी, आवास का अधिकार आदि। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने यह घोषणा की है कि अगर उसका प्रत्याशी जीतता है तो वह सिर्फ़ और सिर्फ़ एक कुशल मज़दूर जितना ही वेतन लेगा और बाक़ी का पैसा विकास निधि में डाल दिया जायेगा।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

‘सीओपी’ से यदि पर्यावरण विनाश रुकना है तब तो विनाश की ही सम्भावना अधिक है!

● सार्थक

पिछले महीने मिस्र के शर्म अल-शेख़ शहर में 6 नवम्बर से 20 नवम्बर तक जलवायु संकट पर ‘कॉन्फ्रेंस ऑफ़ पार्टीज़’ का सत्ताइसवाँ सम्मलेन (सीओपी-27) आयोजित किया गया। एक बार फिर तमाम छोटे-बड़े देशों के प्रतिनिधियों ने अन्तरराष्ट्रीय मंच पर इकट्ठा होकर जलवायु संकट पर घड़ियाली आँसू बहाये, पर्यावरणीय विनाश पर शोक-विलाप किया, पृथ्वी को तबाही से बचाने की अपीलें की। इसके अलावा, जलवायु संकट के लिए कौन-से देश ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं और कौन इसके लिए आर्थिक भरपाई करेगा, इस मुद्दे पर भी लम्बी खींचातानी चली। लेकिन दो सप्ताह की नौटंकी के बाद इस सम्मेलन का भी वही हश्र हुआ जो इसके पहले के सम्मेलनों का हुआ था। यानी जलवायु संकट वहीं का वहीं बना हुआ है लेकिन विश्व पटल पर प्रकृति बचाने का नाटक खेल लिया गया। ‘सीओपी-27’ से भी कोई ठोस रणनीति या योजना हाथ नहीं लगी, बस जुमले, खोखले वायदे और झूठी तसल्लियों का मुज़ाहिरा हुआ। हमें ऐसे सम्मेलनों से कुछ अधिक की उम्मीद भी नहीं थी हालाँकि इसे आयोजित करने में भले ही दुनिया के मेहनतकशों की गाढ़ी कमाई को पानी की तरह बहाया गया होगा।

दुनियाभर के जलवायु विशेषज्ञ, वैज्ञानिक और पर्यावरणविद ‘सीओपी-27’ सम्मेलन से तीन मुख्य बिन्दुओं पर ठोस निर्णय की उम्मीद लगाये हुए थे। ये तीन मुख्य बिन्दु हैं – ग्लोबल वॉर्मिंग (पृथ्वी का तापमान बढ़ने) को 2015 के पेरिस समझौते के तहत तय 1.5 डिग्री तक सीमित रखने के लिए एक ठोस रूपरेखा और कार्यदिशा अपनाना, ग्लोबल वॉर्मिंग को रोकने के लिए विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को 100 अरब डॉलर की सालाना आर्थिक सहायता पर ठोस निर्णय लेना और जवाबदेही और तीसरे, जलवायु संकट की मार झेल रहे देशों के लिए एक हानि व क्षति कोष (‘लॉस एण्ड डैमेज फ़ण्ड’) का गठन करना। इन तीन बिन्दुओं में से सिर्फ़ तीसरे बिन्दु पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका है। निर्धारित समयसीमा के समाप्त होने के बाद दो दिनों तक चली लम्बी रस्साकशी के बाद महज़ हानि व क्षति कोष का गठन करने पर मंज़ूरी बन पायी। लेकिन इस कोष में कौन-सा देश कितना आर्थिक योगदान करेगा और कौन-से देश इस कोष का उपभोग कर पायेंगे, यह अब तक स्पष्ट नहीं है। इस मसले को अगले सम्मलेन तक टाल दिया गया है।

दुनियाभर का प्रभुत्वशाली मीडिया इस फ़ैसले को ‘सीओपी-27’ की एकमात्र सफलता के रूप में पेश कर रहा है। लेकिन यह असल में एक निरर्थक क़दम है क्योंकि दुनिया के दो प्रमुख कार्बन उत्सर्जक देश – चीन और भारत ने ख़ुद को विकासशील देश बताते हुए इस कोष में योगदान करने से साफ़ मना कर दिया है। ऐसी स्थिति में इस बात की सम्भावना बहुत कम ही है कि अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोपीय संघ और कुछ अन्य विकसित देश मिलकर एक स्थायी कोष का निर्माण करेंगे। जनता के दबाव से यह कोष अगर गठित हो भी जाता है, तो क्या इससे सभी विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन के कारण हो रही क्षति की पूरी भरपाई की जा सकती है? नहीं।

एक रिपोर्ट के अनुसार अकेले पाकिस्तान में इस साल आयी बाढ़ से 30 अरब डॉलर की क्षति हुई है। इन सबसे परे सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या जलवायु संकट के कारण लाखों की तादाद में हो रही मौतों की भरपाई यह कोष कर सकता है? क्या लोगों की ज़िन्दगियों को पैसे से तोला जा सकता है? क्या मरने वालों के परिवार को पैसे देकर उनके प्रियजन लौटाये जा सकते हैं? नहीं। पकिस्तान की बाढ़ में 1700 लोगों की मौत हो गयी। जब तमाम देशों के पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि ‘सीओपी-27’ की नौटंकी में शरीक थे, उसी समय सोमालिया की जनता एक भीषण सूखे और अकाल से जूझ रही थी। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (‘यूनिसेफ़’) के अनुसार सोमालिया के पाँच साल से कम आयु के पाँच लाख बच्चे इस सूखे और अकाल से मर सकते हैं। ‘लान्सेट’ वैज्ञानिक पत्रिका की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार 2000-2004 की तुलना में 2017-2021 की अवधि में भीषण गर्मी या सर्दी के कारण एक साल से कम आयु के बच्चों और 65 साल से अधिक आयु के वयस्कों की 68 प्रतिशत ज़्यादा मौतें हुई हैं। मोनाश विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये एक शोध के अनुसार 2000 से 2019 के बीच असामान्य गर्मी या सर्दी के कारण हर साल औसतन 50 लाख लोगों की मौत हुई है। क्या इन मौतों की भरपाई साम्राज्यवादी-पूँजीवादी देशों के चन्द टुकड़ों से हो सकती है? वह भी तब जब इस कोष की कोई ठोस रूपरेखा या भौतिक आधार नहीं है, बस हवा में बात उछाली गयी है। सिर्फ़ एक कोष के गठन का खोखला वायदा करके पूँजीपति वर्ग और भाड़े का मीडिया हमें इस ग़फ़लत में रखना चाहता है कि जलवायु संकट के प्रति उनका सरोकार गम्भीर है और वे इस ओर कुछ सकारात्मक क़दम उठा रहे हैं। लेकिन हम-आप अच्छे से जानते हैं कि वास्तविकता इससे मीलों दूर है।

2015 में ‘सीओपी-21’ में पेरिस समझौते के तहत औद्योगिक क्रान्ति के पहले ग्लोबल वॉर्मिंग का जो स्तर था उसकी तुलना में 1.5 डिग्री की बढ़ोत्तरी तक सीमित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। उस समय दुनियाभर के प्रभुत्वशाली मीडिया ने इसे जलवायु संकट के समाधान की दिशा में एक मील-का-पत्थर क़रार दिया था। पेरिस समझौते के बाद छह ‘सीओपी’ सम्मेलन हो चुके हैं लेकिन आज तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि यह लक्ष्य हासिल कैसे किया जायेगा। इन सम्मेलनों में तमाम देशों ने कुछ वायदे, कुछ दावे ज़रूर किये, लेकिन कोई भी संजीदा जलवायु विशेषज्ञ या पर्यावरणविद इन वायदों और दावों को गम्भीरता से नहीं ले रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (‘यूएनईपी’) द्वारा पिछले महीने प्रकाशित रिपोर्ट में यह साफ़ लिखा गया है कि वर्तमान स्थिति के अनुसार सदी के अन्त तक 1.5 डिग्री के लक्ष्य को हासिल करने का कोई भी प्रामाणिक रास्ता नहीं दिख रहा है। रिपोर्ट के अनुसार अगर सभी देश उसी ढर्रे पर चलते रहे जैसा कि आज चल रहे हैं तो सदी के अन्त तक पृथ्वी का तापमान 2.8 डिग्री बढ़ जायेगा। अगर सभी देश अपने किये गये वायदों को पूरा भी करते हैं, जिसकी सम्भावना नहीं के बराबर है, तब भी पृथ्वी का तापमान 2.4 डिग्री तक बढ़ जायेगा। जलवायु परिवर्तन पर अन्तर-सरकारी पैनल के अनुसार यह काफ़ी हद तक सम्भव है कि अगले 18 सालों में ही हम 1.5 डिग्री सीमा को पार कर जायेंगे। आज जब ग्लोबल वॉर्मिंग 1.1 डिग्री है तब तो हमें भीषण लू, प्रलयंकारी बाढ़, सूखा, कड़ाके की सर्दी, साइक्लोन, जंगलों की आग आदि का नियमित सामना करना पड़ रहा है। दो दशक में जब यह बढ़कर 1.5 डिग्री हो जायेगी तब स्थिति कितनी भयंकर होगी उसकी कल्पना कर ही हम सिहर उठते हैं।

लेकिन ‘सीओपी-27’ में पहुँचे प्रतिनिधियों को देखकर लग रहा था कि उनके लिए ऐसी प्राकृतिक तबाही ज़्यादा गम्भीर बात नहीं है, तभी किसी ठोस निर्णय तक नहीं पहुँचा गया। जीवाश्म ईंधन यानी पेट्रोल, डीज़ल आदि की खपत को किस तरह चरणबद्ध तरीक़े से ख़त्म करना है उस पर भी कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं बनायी गयी। कहा जाता है कि जब रोम जल रहा था तब रोम का बादशाह नीरो बाँसुरी बजा रहा था। दुनियाभर का पूँजीपति वर्ग और इसके तमाम राजनीतिक प्रतिनिधि जलवायु संकट के प्रति नीरो की ही तरह बेसुध और आत्ममुग्ध दिख रहे हैं। आज पृथ्वी विनाश के मुहाने पर खड़ी है लेकिन सभी देशों की सरकारें पूँजीपति वर्ग के लिए ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा सुनिश्चित करने के मक़सद से सारे नियम-क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाकर पूरी प्राकृतिक सम्पदा उनके पैरों में न्योछावर कर रही हैं। मुनाफ़े की हवस में पागल पूँजीपति न वर्तमान न भविष्य, कुछ भी नहीं देख रहे और सभी कुछ होम कर रहे हैं।

दो सप्ताह तक चले इस सम्मलेन में भी नफ़ा-नुक़सान ही मुद्दा बना रहा। ग्लोबल वॉर्मिंग को रोकने की रणनीति का मुद्दा तो कहीं डिनर टेबलों के नीचे या कुर्सियों के पीछे पड़ा रहा। बहस इस बात पर हो रही थी कि पर्यावरण को हो रहे नुक़सान की भरपाई कौन करेगा। इसके अलावा दूसरा प्रमुख मुद्दा यह बना कि विकासशील देशों में ‘ग्रीन तकनोलॉजी’ का उपयोग बढ़ाने के लिए विकसित देशों द्वारा दिया जाने वाला अनुदान कितना हो। 2009 के कोपेनहेगेन सम्मलेन में यह तय हुआ था कि प्रति वर्ष विकसित देश ‘ग्रीन तकनोलॉजी’ के लिए 100 अरब डॉलर आर्थिक सहायता देंगे। पिछले साल विकसित देशों ने विकासशील देशों को क़रीब 80 अरब डॉलर की सहायता दी। लेकिन ग़ौर करने वाली बात यह है कि जो पैसे विकासशील देशों को मिले उसका अधिकांश अनुदान के रूप में नहीं बल्कि क़र्ज़ के रूप में दिया गया है। आर्थिक सहायता का एक बड़ा हिस्सा तो काग़ज़ों पर किये वायदों की तरह है जिन्हें विकसित देशों ने कभी पूरा ही नहीं किया। स्पष्ट है कि विकसित देश ‘हरित तकनोलॉजी’ के विकास और कार्बन उत्सर्जन को रोकने के लिए अपनी ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी से मुँह फेर रहे हैं। लेकिन इसे बहाना बनाकर सभी विकासशील देशों की सरकारें जिस तरह पर्यावरण संकट के समाधान के सवाल पर अपने हाथ खड़े कर रही हैं और अपनी बेबसी का रोना रो रही हैं वह सिर्फ़ उनकी चालबाज़ी की ही निशानी है। आज किसी भी देश में पर्यावरणीय विनाश के लिए उस देश का घरेलू पूँजीपति वर्ग उतना ही ज़िम्मेदार है जितना विदेशी पूँजीपति वर्ग। हम भारत के मज़दूरों को तो यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि हमारे देश में प्रकृति का जो अन्धाधुन्ध दोहन हो रहा है उसके लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार यहाँ का घरेलू पूँजीपति वर्ग है। साल-दर-साल सभी देशों के पूँजीपति वर्गों की पार्टियाँ अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में जलवायु संकट का ठीकरा एक दूसरे के माथे फोड़ती रहती हैं, लेकिन इस संकट की मार तो हम मेहनतकशों को ही झेलनी पड़ती है।

पहले के छब्बीस ‘सीओपी’ की तरह यह ‘सीओपी-27’ भी एक नौटंकी से ज़्यादा और कुछ नहीं है। 1995 में ‘सीओपी’ का पहला सम्मेलन आयोजित हुआ था। उस समय वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड का संकेन्द्रण 362 पीपीएम था। आज यह बढ़कर 420 पीपीएम हो गया है। कहने का मतलब यह है कि पिछले 27 सालों में तमाम देशों के प्रतिनिधि प्रति वर्ष जलवायु संकट और पर्यावरणीय विनाश की दुहाई देते रहे हैं। लेकिन कार्बन उत्सर्जन तेज़ी से बढ़ता चला गया और जलवायु संकट बद से बदतर होता गया। अगर हम ग्लासगो में हुए ‘सीओपी-26’ की बारीकियों पर नज़र डालें तो बात और भी साफ़ हो जाती है। उदाहरण के लिए, इस सम्मलेन में 145 देशों ने 2030 तक जंगलों की पूरी कटाई को पूरी तरह से ख़त्म करने के प्रस्ताव पर रज़ामन्दी दी थी। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत और ब्राज़ील भी शामिल थे। लेकिन इस सम्मेलन के बाद दोनों देशों ने अन्धाधुन्ध जंगल काटे। ब्राज़ील में तो जनवरी से जून 2022 के बीच रिकॉर्ड-तोड़ जंगल काटे गये। महज़ छह महीनों में क़रीब चार लाख हेक्टेयर वर्षावन को साफ़ कर दिया गया। भारत में भी पिछले एक साल में क़रीब एक लाख हेक्टेयर जंगल काटा गया है। मोदी सरकार के 2014 में सत्ता में आने के बाद से भारत में 10 लाख हेक्टेयर से ज़्यादा जंगल काट डाले गये हैं। हर साल देश में बाढ़ की समस्या बढ़ती जा रही है। जहाँ बाढ़ नहीं आती थी वहाँ बाढ़ आ रही है। बाढ़ पहले से ज़्यादा विनाशकारी और आक्रामक होती जा रही है। इसके पीछे भी मुख्य कारण पूँजीपतियों की मुनाफ़े की हवस के चलते जंगलों का सफ़ाया है।

एक ओर देश में पर्यावरण की यह बदहाल स्थिति और दूसरी ओर भारत के बड़बोले प्रधानमंत्री। अपनी आदत से मजबूर नरेन्द्र मोदी अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर भी बड़े-बड़े जुमले फेंक आते हैं। लेकिन यहाँ फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि ‘सीओपी’ सम्मेलन और इस जैसे तमाम अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर सिर्फ़ मोदी ही नहीं, लगभग सभी बड़े देशों के प्रतिनिधि जुमलेबाज़ी ही करते

(पेज 2 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गाँधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006